फोकस इण्डिया
प्रकाशन
नवम्बर, 2016

एक अनचाही क्रांति?

पूर्वी भारत की 'हरित क्रांति' की पुनःकल्पना की मांग

सहयोग
रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफटुंग,
दक्षिण एशिया

एक अनचाही क्रांति?

पूर्वी भारत की 'हरित क्रांति' की पुनःकल्पना की मांग

FOCUS ON THE GLOBAL SOUTH

एक अनचाही क्रांति ?
पूर्वी भारत की 'हरित क्रांति' की पुनःकल्पना की मांग

लेखक : **सुधांशु लाल**

प्रकाशन : **नवम्बर, 2016**

द्वारा प्रकाशित :
और इस पुस्तिका
की प्रतियां पाने
के लिए संपर्क

फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ
33–डी, तीसरी मंजिल, विजय मंडल एनक्लेव
डी.डी.ए. एस.एफ.एस. फ्लैट्स, कालू सराय, हौज खास
नई दिल्ली–110016
टेलीफोन : 91–11–26563588, 41049021
http://focusweb.org/

सहयोग :

रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफटुंग, साउथ एशिया
सेंटर फोर इंटरनेशनल कॉ–ऑपरेशन
सी–15, दूसरी मंजिल, सफदरजंग डेवलपमेंट एरिया मार्केट,
नई दिल्ली–110016
www.rosalux-southasia.org

"Sponsored by the Rosa Luxemburg Foundation e.V. with funds of the Federal Ministry for Economic Cooperation and Development of the Federal Republic of Germany."

"Gefördert durch die Rosa-Luxemburg-Stiftung e.V. aus Mitteln des Bundesministerium für wirtschaftliche Zusammenarbeit und Entwicklung der Bundesrepublik Deutschland"

आवरण फोटो साभार : लेखक

डिजाइन एवं मुद्रण : **इंडिगो**, 9313852068

इस पुस्तिका की विषयवस्तु का इस शर्त के साथ बिना–रोक टोक के पुनर्मुद्रण और उद्धृत किया जा सकता है कि इस स्रोत का उल्लेख किया जाए। फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ उस प्रकाशित सामग्री को पाने पर आभारी रहेगा, जिसमें इस रिपोर्ट का उल्लेख किया गया है।

यह एक अभियान प्रकाशन है और निजी वितररण के लिए है!

विषय सूचि

	परिचय : प्रथम हरित क्रांति की शुरुआत	5
1.	पंजाब का अनुभव : कृषि विकास का उत्थान–पतन	8
2.	''पूर्वी भारत में हरित क्रांति'' की शुरुआत	15
3.	पूर्वी भारत में खेती का मौजूदा दृश्य	18
4.	पूर्वी भारत में संकर बीजों की लोकप्रियकरण	22
5.	पूर्वी राज्यों में खेती का मशीनीकरण	32
6.	दूसरी हरित क्रांति की पुनः कल्पना – विकल्प और किसान अनुकूल रणनीति	38
7.	'बी.जी.आर.ई.आई' (BGREI) योजना का संपूर्ण मूल्यांकन	45
	निष्कर्ष	53
	परिशिष्ट	55

परिचय : प्रथम हरित क्रांति की शुरुआत

वर्ष 1960 के दौरान, भारत खाद्य सहायता (Food Aid) आयात करने में सबसे आगे था – खासतौर से, संयुक्त राज्य अमेरिका के पी.एल. 480 (PL-480) कार्यक्रम के तहत। असल में, वर्ष 1966 में, करीब 1 करोड़ टन से भी ज्यादा मात्रा में गेहूं का आयात किया गया। जिसकी वजह से भारत को विदेशी जहाजों पर आश्रित देश के रूप में जाना जाने लगा। ऐसे में भारत ने डॉ. नॉर्मन बोरलॉग को आमंत्रित किया, जिन्होंने 'मैक्सिकन ड्वार्फ' नामक किस्म विकसित की थी, जो भारत में रबी फसल के रूप में उपयुक्त थी। अगले साल देश ने धान की एक और बौने किस्म IR8 का प्रयोग किया और इसके साथ ही भारत में हरित क्रांति के सफर की शुरुआत हुई।

इन छोटे तने वाली फसलों ने एक बुनियादी दिक्कत सुलझा दी – पुराने चलन की फसलें लंबी और बड़े पाए वाली होती थीं, इसलिए जब इन पर खाद डाली जाती थी तो ये बहुत लम्बी हो जाती और हवा से मुड़कर–लटककर इसके दाने झर जाते थे। बोरलॉग द्वारा इजाद की गई किस्मों की पैदावार ज्यादा थी। इनमें बीज भी वजनी होते थे। अगले 5 दशकों में इन किस्मों ने पूरी दुनिया में प्रसिद्धि पा ली।[1]

जुलाई 1964 में जब सी. सुब्रह्मण्यम भारतीय संघ के खाद्य एवं कृषि मंत्री बने तो उन्होंने बड़े स्तर पर सिंचाई की व्यवस्था और खाद के साथ–साथ उच्च–उत्पादन वाली किस्मों (HYV) को फैलाने का काम किया। वर्ष 1968 में, भारतीय किसानों ने 1.70 करोड़ टन गेहूं पैदा करने का नया कीर्तिमान स्थापित किया। इससे पहले सबसे ज्यादा पैदावार वर्ष 1964 में 1.20 करोड़ टन की हुई थी। पैदावार की इस ऊंची छलांग ने जुलाई 1968 में इंदिरा गांधी को 'गेहूं क्रांति' की घोषणा करने को प्रेरित किया।[2]

भारत हरित क्रांति लाने वाला विश्व में दूसरा देश था। शुरुआती दौर में यह पंजाब, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में चलाया गया जिसमें खासतौर पर उच्च–उत्पादन वाली किस्म के बीजों (मुख्यतः गेहूं और चावल), कीटनाशकों और खाद का प्रयोग करने पर बल दिया गया। एक–फसल उगाने की कृषि पद्धति अपनाने वाले भारत में पहली बार दोहरी फसल उगाने का तरीका अपनाया गया, जो हरित क्रांति की एक विशेषता है। तब तक भारत में खेती सिंचाई के लिए बारिश पर आश्रित रहती थी, साल में एक फसल परंपरा बन गई थी। पर दोहरी फसल व्यवस्था में बारिश के पानी के अलावा भी अन्य जल–स्रोतों की जरूरत पड़ने लगी, जिससे भूजल स्रोतों पर निर्भरता और उनका दोहन बढ़ने लगा।

पैदावार बढ़ाने की अंधी दौड़ में जरूरत से ज्यादा कीटनाशकों का प्रयोग होने लगा जिसने भू–जल को गंदा और प्रदूषित कर दिया। गेंहूं और धान के ऊपर सारा ध्यान चला गया जिससे हमारी खेती की विविधता को बहुत नुकसान पहुंचा और फलस्वरूप जौ, बाजरा जैसे प्रोटीनयुक्त और पुष्टिकर मौटे अनाजों से हमारे किसान दूर हो गए।[3]

सामाजिक आर्थिक और जातिगत गणना (Social Economic and Caste Census), 2011 के अनुसार 83.3

---

[1] *https://www.economist.com/news/leaders/21601850-technological-breakthroughs-rice-will-boost-harvests-and-cut-poverty-they-deserve-support*

[2] *Swaminathan, M.S., (2012). "Food as People's Right", 3 January 2012, Hindu, New Delhi.*

[3] *http://lctpi.wbcsd.org/wp-content/uploads/2015/12/LCTPi-CSA-Action-Plan-Report.pdf*

करोड़ लोग ग्रामीण भारत में रहते हैं। इनमें से अधिकतर लोग जीवन यापन के लिए आंशिक या पूर्ण रूप से कृषि कार्य से जुड़े हुए हैं जिसमें खेती, बागवानी, पशु पालन, और मछली पालन, इत्यादि शामिल हैं।

अपर्याप्त ग्रामीण ढांचागत संरचना, समावेशी शासन का अभाव, सामाजिक अन्याय (जिसने सदियों से हमारे समाज में ऊंच–नीच और भेदभाव पैदा किया है), जलवायु अनिश्चितता, और किसी अर्थपूर्ण समाजिक सुरक्षा व्यवस्था के अभाव के कारण ग्रामीण भारत का भविष्य असुरक्षा और अंधकार में डूबा है। फिर भी भारत दूध, दाल और मसालों के उत्पादन में विश्व में सबसे आगे है। ऐसे में ये सवाल उठता है कि पहली हरित क्रांति ने आखिरकार किसे फायदा पहुंचाया है?[4]

> एन.एस.एस.ओ (NSSO) के आंकड़े यह दिखाते हैं कि 1993–94 और 2004–05 के बीच प्रति व्यक्ति दलहन की खपत सबसे गरीब 5 प्रतिशत लोगों में बढ़ी, पर बाकी 95 प्रतिशत लोगों में इसकी खपत बहुत घट गई। यह गिरावट शहरों की अपेक्षा ग्रामीण इलाकों में ज्यादा पैनी थी। जबकि जानवरों को खिलाने के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली दालों की मांग लगातार बढ़ रही है।[5]
>
> हकीकत ये है कि भारत 1990 से दलहन का अच्छा खासा निर्यात करता रहा है। वर्ष 2010–11 में, अगर गेहूं और गैर–बासमती चावल के निर्यात पर लगे प्रतिबंध को छोड़ दिया जाए तो, भारत ने 50 लाख टन अनाज का निर्यात किया जिसमें 20 लाख टन बासमती चावल और 30 लाख टन मक्का शामिल है। इसके साथ–साथ गेंहू और चावल का ठोस भंडारण भी किया गया। ऐसे साक्ष्य मौजूद हैं कि भारतीय कृषि में पैदावार में सुधार की संभावनाएं बहुत हैं जिससे हमें आयातित खाद्यान्न पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा और घरेलू पैदावार से ही हमारी अनाज की जरूरतें पूरी हो जाएंगी।[6]

लंबे समय की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए हमें जनसंख्या बढ़ने की दर से ज्यादा तेजी से अनाज की पैदावार बढ़ाने पर ध्यान लगाना होगा[7] जिससे खेती के अन्य कामों के लिए पर्याप्त जमीन उपलब्ध हो सके।[8]

राष्ट्र के प्राथमिक मुद्दे के रूप में, खाद्य सुरक्षा और स्थिरता के नजरिये से, भारत सरकार 'हरित क्रांति' को कम पैदावार वाले पूर्वी क्षेत्र में तेजी से बढ़ा रही है। वर्ष 2011–12 में राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (RKVY) की उपयोजना के रूप में ''पूर्वी भारत में हरित क्रांति की शुरुआत' (Bringing Green Revolution in Eastern India – BGREI) कार्यक्रम का सुत्रपात किया गया।

अगर हम खाद्यान्न उत्पादन के बारे में BGREI के परिणाम देखें तो पाएंगे कि विकास तो हुआ है पर पश्चिमी भारत में इसके नुकसान भी सामने आए हैं। तेजी से घटता जल स्तर भविष्य के लिए एक बड़ी चुनौती बन गया है; अत्यधिक कीटनाशकों और खाद के प्रयोग ने न सिर्फ उपभोक्ताओं पर असर डाला है, बल्कि भू–जल को भी प्रदूषित किया है। BGREI के असर की तुलना पहली हरित क्रांति से करना चाहिये तथा उसके सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रभावों को भी देखा जाना चाहिए।

---

[4] *http://ageconsearch.umn.edu/bitstream/204794/2/04-Ashok%20Dalwai.pdf*

[5] *http://ageconsearch.umn.edu/bitstream/204792/2/02-Inaugural%20Address.pdf*

[6] *http://krishi.maharashtra.gov.in/Site/Upload/Pdf/latur_cdap.pdf*

[7] *Shome, Parthasarathi and Sharma, Pooja. (ed.) (2015) "Emerging Economies: Food and Energy Security, and Technology and Innovation, Springer, Page 111*

[8] *https://ageconsearch.umn.edu/bitstream/152078/2/1-Presidentialaddress.pdf*

1. पंजाब का अनुभव : कृषि विकास का उत्थान–पतन

हरित क्रांति की शुरुआती दिनों में पंजाब भारतीय कृषि का नायक था। पंजाब का वार्षिक औसत कृषि–सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी) का विकास दर 1972–1986 के बीच 5.7 प्रतिशत था, जो पूरे भारत के औसत विकास दर (2.3 प्रतिशत) से दोगुने से भी ज्यादा था। लेकिन उसके बाद वर्ष 1987 से 2005 के बीच पंजाब का कृषि विकास दर कम होकर मात्र 3 प्रतिशत हो गया पर इस दौरान भारत का औसत 2.9 प्रतिशत था जो पहले से ज्यादा था।[9] पिछले कुछ वर्षों में पंजाब के कृषि क्षेत्र में गंभीर पतन के संकेत मिल रहे हैं। वर्ष 2009–10, 2010–11, 2011–12, और 2012–13 में कृषि विकास दर 2 प्रतिशत से भी कम रहा है, और वर्ष 2009–10 और 2012–13 में तो नकरात्मक रहा है।[10] वर्ष 2003 तक, भारत के 21 बड़े राज्यों में से सबसे ज्यादा प्रति व्यक्ति आय रखने वाला राज्य पंजाब ही था, पर धीरे–धीरे गिरते हुए यह सातवें स्थान पर आ गया।

सिंचाई के जल का 80 प्रतिशत भू–जल स्रोतों से प्राप्त होता है। ऊर्जा के लिए सरकारी सब्सिडी का अधिकतम हिस्सा धान की खेती में चला जाता है, जिसकी खेती में बहुत पानी खर्च होता है (1 किलो चावल के उत्पादन में 3000 से 5000 लीटर सिंचाई का जल लगता है)। धान की एक फसल में 25 बार सिंचाई की जरूरत पड़ती है। पंजाब के पास 11.73 लाख से भी ज्यादा ट्यूबवेल हैं। वर्ष 2008 से 2012 के बीच पंजाब का जल स्तर 70 सेंटीमीटर प्रति वर्ष की दर से घटा है। कुल 132 में से 110 ब्लाक 'अति शोषित' (जलस्तर कम) घोषित कर दिए गए। राज्य के वर्तमान बजट में ऊर्जा में दी जा रही सब्सिडी वर्ष 2018 में 13,000 करोड़ रुपयों का आंकड़ा पार कर गया।[11] यह पंजाब की खेती का सबसे चिंताजनक पहलू है।

पंजाब में किसानों पर लगातार कर्ज का बोझ बढ़ता जा रहा है। खेती से जुड़े परिवारों में से 72 प्रतिशत भारी कर्ज में डूबे हुए हैं। पंजाब को लोग अब 'कैंसर कैपिटल' (कैंसर राजधानी) के नाम से जानने लगे हैं।[12] शुरुआत में जितनी सफलता पंजाब को मिली थी उससे कहीं ज्यादा का नुकसान हो गया। इसलिए 'हरित क्रांति' की गंभीर आलोचना हो रही है।[13] सामाजिक आंदोलनकारियों का कहना है कि हरित क्रांति से वातावरण और पर्यावरण को काफी नुकसान पहुंचा है।[14]

---

[9] *http://indianexpress.com/article/opinion/columns/from-plate-to-plough-punjab-agriculture-lessons-for-the-field-green-revolutions-heyday-gdp-growth-4753622/*

[10] *http://www.business-standard.com/article/economy-policy/punjab-economy-to-grow-at-5-3-in-2014-15-survey-115031901254_1.html*

[11] *https://www.hindustantimes.com/punjab/10-of-punjab-s-budget-goes-into-power-subsidy/story-2KZCkCr3ezXaTqRm8L9OIK.html*

[12] *Dheer, Gautam. (2013). "Punjab India's Grain Bowl, Now Reels under Agrarian Crises", 7 June 2013, Deccan Herald, New Delhi.*

[13] *Sambrani, Shreekant. (2014). "Tribute to a Saint who did Miracle with Wheat", 12 September 2014, Business Standard, New Delhi.*

[14] *http://www.thehindu.com/todays-paper/tp-opinion/food-as-peoples-right/article2769860.ece*

अगस्त 2013 में इंडियन एक्सप्रेस को दिए गए एक साक्षात्कार में केंद्रीय कृषि मंत्री शरद पवार ने पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में मिट्टी की क्षमता में आई भारी कमी पर बात की। उन्हें यह कहते बताया गया है कि ''कुछ साल पहले तक हम पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश पर निर्भर थे। हां, ये महत्वपूर्ण राज्य हैं, लेकिन समस्या ये है कि एक के बाद एक गेहूं और चावल की लगातार खेती ने भू–जल और मिट्टी की गुणवत्ता पर बुरा असर डाला है जिससे यहां की जमीन ऊसर और अनुपजाऊ हो गई है। इसीलिए पूर्वी भारत में भी हरित क्रांति की शुरुआत की जा रही है। इस बार बिहार, छत्तीसगढ़ और पूर्वी उत्तर प्रदेश को केन्द्र में रखा गया है। आपको जानकर खुशी होगी कि छत्तीसगढ़ और उड़ीसा आज चावल के महत्वपूर्ण उत्पादक राज्या बन गए हैं।''[15]

1.1 हरित क्रांति का प्रभाव

अपनी शुरुआत से लेकर आज तक हरित क्रांति ने भले ही भारत का खाद्य भंडारण (गेहूं और चावल) कई गुना बढ़ाया है पर अभी भी यह भारत को खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर नहीं बना पाया है। आज भी भारत को कभी–कभी गेहूं, चावल और अन्य जरूरी खाद्य पदार्थों की कमी से जूझना पड़ता है। वर्ष 1998, 2006 और 2014 में घरेलू उपयोग के लिए भारत को प्याज, दाल और चीनी आयात करना पड़ा।

तालिका 1 : मुख्य फसलों का उत्पादन तथा संबंधित क्रियाकलाप : (1950-51 से 1996-97 तक)

(प्रति दस लाख टन में)

फसलें	1950–51	1970–71	1980–81	1990–91	1996–97
खाद्यान्न	50.8	108.42	129.59	179.39	199.32
चावल	20.58	42.22	53.63	74.29	81.31
गेहूं	6.46	23.83	36.31	55.14	69.27
मोटे अनाज	15.38	30.55	29.02	32.70	34.28
दालें	8.41	11.82	10.63	14.26	14.46
गन्ना	57.05	126.37	154.25	241.05	277.25
कपास (प्रति दस लाख बंडल)	3.04	4.76	7.01	9.84	14.25
नौ तेलीय बीज	5.16	9.63	9.37	18.61	24.96
दूध	17.00	21.00	31.60	53.90	68.60
मछली	0.80	1.80	2.40	3.80	5.35

स्त्रोत : Agricultural Statistics at a Glance, 1997, Ministry of Agriculture, Govt. of India

[15] *Samantha, Pranab Dhal. (2013). "All this is possible only if my Farmers can Produce..., We Must See He Gains", 26 August 2013, Indian Express, New Delhi.*

तालिका 1 में गेहूं, चावल के साथ–साथ गन्ने जैसे अनाज के उत्पादन में बढ़ोतरी दिखती है। इससे इतर हम यह भी देख सकते हैं कि दलहन और तिलहन में बहुत कम बढ़ोतरी दर्ज की गई जो कि समाज के माध्यम और निचले तबके के जनसमूह के लिए प्रोटीन और वसा का मुख्य स्रोत है। ये आंकड़े खाद्यान्न उत्पादन में हुई बढ़ोतरी तो दिखाते हैं पर इन में फल और सब्जियों के उत्पादन से जुड़ी कोई जानकारी नहीं है, जो विटामिन और अन्य पोषक तत्वों के प्रमुख स्रोत हैं।

तालिका 2 : कृषि में निवेश (वर्ष 1980–81 की स्थिर दर पर)

(रुपये करोड़ में)

वर्ष	कुल GCF खेती में	सरकारी (GCF)	निजी (GCF)	प्रतिशत हिस्सेदारी	
				सरकारी	निजी
1960–61	1668	589	1079	35.3	64.7
1970–71	2758	789	1969	28.6	71.4
1980–81	4636	1796	2840	38.7	61.3
1990–91	4594	1154	3440	25.1	74.9
1991–92	4729	1002	3727	21.2	78.8
1992–93	5372	1061	4311	19.7	80.3
1993–94	5031	1153	3878	22.9	77.1
1994–95	6256	1316	4940	21.0	79.0
1995–96	6961	1268	5693	18.2	81.8
1996–97 (Q)	6999	1132	5867	16.2	83.8

Q: जल्द संभावित आंकड़े (Quick Estimates); GCF: Gross Capital Formation;

स्त्रोत : http://indiabudget.nic.in/es97-98/chap83.pdf

तालिका 2 हमें 1991 से 1997 तक कृषि निवेश में हुए बदलाव के बारे में बताती है। निजी निवेश बढ़े हैं जबकि सरकारी निवेश घटे हैं। इससे पता चलता है कि कृषि उत्पाद जैसे कि खाद, कीटनाशक और अन्य खेती के औजारों पर भारी सब्सिडी देने का सरकारी दावा खोखला है। असल में कृषि निवेश में सरकार की भागीदारी घटी है, जिससे उत्पादन के सरकारी लक्ष्य को पाने के लिए किसानों को अपनी जेब से खर्च करना पड़ रहा है। वर्ष 1991 में हुए भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारवाद के बाद के आंकड़े बताते हैं कि 'सब्सिडी का बोझ' का दावा देखा जाये तो उपलब्ध आंकड़ो के साथ मेल नहीं खा रहा, मजेदार बात तो ये है कि 1991 से 1997 तक, जब हरित क्रांति को पूरे जोर–शोर से धक्का दिया जा रहा था, तब कृषि में सरकारी खर्च असल में 21.2 प्रतिशत से लुढ़क कर 16.2 प्रतिशत हो गया था।

तालिका 3 : आठवीं योजना, फसलों के लक्ष्य और उत्पादन का प्रदर्शन (दस लाख टन में/कपास के लिए 170 किलो के प्रति 10 लाख बंडल)						
फसलें	8वीं योजना के लक्ष्य	1992–93	1993–94	1994–95	1995–96	1996–97
		उपलब्धियां				
चावल	88.0	72.86	80.30	81.81	76.98	81.31
गेहूं	66.0	57.21	59.84	65.77	62.10	69.27
मोटे अनाज	39.0	36.59	30.81	29.88	29.03	34.28
दालें	17.0	12.82	13.31	14.04	12.31	14.46
खाद्यान्न	210.0	179.48	184.26	191.50	180.42	199.32
नौ तेलीय बीज	23.0	20.11	21.50	21.34	22.10	24.96
गन्ना	275.0	228.03	229.66	275.54	281.10	277.25
कपास	14.0	11.40	10.74	11.89	12.86	14.25
स्त्रोत : Planning Commission / Ministry of Agriculture, Govt. of India						

यदि हम तालिका 1 व तालिका 3 की तुलना करें तो हम देखते हैं कि गेहूं, चावल और मोटे अनाज के उत्पादन में आए शुरूआती उठान के बाद 1991–1997 के बीच कम ही होता गया और कुछ सालो में ही यह लक्ष्य से काफी नीचे चला गया। चावल के उत्पादन के मामले में आठवीं पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य 8.8 करोड़ टन था, जबकि हमने इससे बहुत कम प्राप्त किया बावजूद इसके कि 'हरित क्रांति' के ऊपर इतना जोर डाला जा रहा था। ठीक यही कमी का सिलसिला दाल, गेहूं, तेल, गन्ने और कपास में देखा जा सकता है।

वर्ष 1991 के बाद खाद्य उत्पादन में आए इस ठहराव का महत्व है और यह हमें एक जरूरी सीख भी देता है। पिछली सदी का अनुभव हमें बताता है कि आत्म–निर्भरता या पार्यप्त पोषण की गारंटी का हरित क्रांति से कोई संबंध नहीं है। इसके अलावा इस 'क्रांति' के प्रथम चरण के कराण पर्यावरण के ऊपर गंभीर नकारात्मक प्रभाव भी पड़े हैं।

1.2 फसलों की विविधता पर प्रभाव :

खेती की शुरूआत से, पीढ़ी–दर–पीढ़ी, भारतीय किसानों ने लगातार प्रकृति से उपलब्ध फसलों की कई जैविक विविधताओं को अपनाया और विकसित किया है। फसलों की यह विविधता न ही अचानक आई है, न ही यह शुद्ध प्राकृतिक है।[16] यह विविधता हजारों साल की कोशिशों और नए प्रयोगों से आई है। फसल चयन, संकर जनन/कलमी (Cross Breeding) और अन्य तकनीकों की मदद से लम्बे समय में पर्यावरण अनुकूल फसलों को संजोया गया है। फसलों की इतनी विविधता के पीछे मुख्य कारण उनका स्थानीय वातावरण में ढ़ल जाना था। असल में बहुत पहले जंगलों से पाए गए चावल की एक प्रजाति से 50,000 से भी ज्यादा

[16] *https://www.grain.org/article/entries/514-reviving-diversity-in-india-s-agriculture*

अलग–अलग प्रजातियां विकसित हुई हैं। यह सब सम्भव हो पाया है किसानी समाज के कौशल और अभिनव तौर–तरीकों से। यह एक ऐसी सच्चाई है जिसे आधुनिक बीज उद्योग अपनी सुविधा के अनुसार हमेशा छुपाने की कोशिश करता है और जिसके बारे में उपभोक्ता भी अनजान है।[17] इन फसलों का मूल स्वभाव आत्मरक्षा है। इसलिए कभी–कभी एक ही गांव में अपने पोषण, पानी, जमीन, और खाद के हिसाब से एक ही प्रजाति के कई किस्में देखने को मिलती हैं। पूर्वोत्तर भारत के कई आदिवासी गाँवो के सीढ़ीनुमा खेतों में एक ही साल में 20 से ज्यादा चावल की किस्म उगाई जाती हैं।

उत्तर भारत में हरित क्रांति के कारण इनमें से कई प्रजातियां या तो मिट गईं या इनकी जगह कुछ खास नफा कमाने वाली प्रजातियों ने ले ली। दूसरे शब्दों में कहें तो 'अंतर–फसल' (inter-cropping) की जगह 'एकल फसल' (mono-cropping) ने ले ली। फसल चुनते समय स्थानीय फसलों की विविधता का प्रसार करने के बजाये ज्यादा ध्यान मुनाफे पर रहा। इस प्रक्रिया में, फसलों की महान जैविक विविधता की जगह एक संकुचित आनुवंशिक फसलों ने ले ली। धान के पौधे की नई किस्म, IR8 ने स्थानीय किस्मों की जगह ले ली, जिसने प्रति हेक्टेयर तीन–चार गुने ज्यादा उत्पादन का वादा किया। अधिकतर स्थानीय फसलें, जिनमें प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उत्पादन की विशेष क्षमता थी, वे धीरे–धीरे गायब होने लगीं।

कृषि के प्राकृत वैविध्य की निरंतरता ही असल में इसकी सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है। इसका सबसे बेहतरीन उदाहरण गढ़वाल हिमालय के 'बारानाजा' से लिया जा सकता है –

> जिसका अर्थ '12 तरह के अनाज' है। इस तरह की खेती में कई फसलों को एकसाथ बोआ जाता हैं। राजमा, उड़द, मुंग, कुल्थ, रामदाना, मंडुआ, झंगोरा, भाट, लोबिया और दूसरी फसलों को कुछ इस तरह से आगे पीछे, आड़े–तिरछे मिलाकर बोया जाता है कि एकबारगी तो देखने में पूरी खिचड़ी मालूम पड़ती है, लेकिन असल में अच्छी और संतुलित पैदावार के लिए यह एक जांचा–परखा तरीका है। चूंकि इन फसलों के पकने के समय में अंतर है, अलग–अलग फसलों की अलग–अलग समय कटाई होती है, जिससे मिट्टी में नमी बनी रहती है और साल भर खाद्य पदार्थ मिलते रहते हैं। दाल जैसे छिलके वाले पौधों से जमीन का उपजाऊपन लगातार बना रहता है। साथ ही, खेत के मेड़ो पर भीमल जैसे पेड़ लगाकर उनका रस्सी, साबुन, टोकरी और जानवरों के चारे के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। 'बारहनाजा' विविधता की जरूरतों को पूरा करने के साथ–साथ एक संपूर्ण उच्च पैदावार देता है। अधिकारिक कृषि विभागों द्वारा फैलाए जा रहे सोयाबीन की एकल फसल के मुकाबले 'बारहनाजा' की पैदावार कहीं ज्यादा है।[18]

1.3 मशीनीकरण का प्रभाव

अधिकतर विकासशील देशों में मशीनीकरण को आधुनिकीकरण के साथ जोड़कर देखा जाता है। खेती के क्षेत्र में, भारत में भी यही धारणा है। खेती पर पड़ने वाले मशीनीकरण के प्रभाव का विवेचन किए बिना ही हमने पश्चिमी तौर–तरीकों का अन्धाधुंध पीछा किया। भारी मशीनों के प्रयोग से भारतीय खेती कट–छंट के

---

[17] *ibid*

[18] *http://pubs.iied.org/pdfs/6119IIED.pdf*

रह गई है। टिकाऊ और पारंपरिक खेती के ढांचे को खत्म करके हम एक अनिश्चित और जोखिम भरी आधुनिक खेती के ढांचे की ओर बढ़ने लगे।

आय और जमीन के मालिकाने में भारी असमानता के कारण किसानों के विभिन्न वर्गों के ऊपर मशीनीकरण का अलग–अलग प्रभाव पड़ा है। भारत में दो–तिहाई से भी ज्यादा किसान छोटे और सीमांत हैं। दुर्भाग्यवश, इन मशीनों के दाम इन किसानों के बस के बाहर तो हैं ही यहां तक कि इनके रख–रखाव का खर्च भी इनके लिए बहुत ज्यादा है।

मशीनीकरण से रोजगार को काफी नुकसान पहुंचा है। उदाहरण के लिए, एक ट्रैक्टर की वजह से खेत में काम करने वाले लोगों के रोजगार खत्म हो गए। जबकि होना ये चाहिए था कि मशीनीकरण से गैर–कृषि रोजगार के अवसर बनने चाहिए थे, पर ऐसा हुआ नहीं। छोटे और किराए पर खेती करने वाले किसानों पर भारी मशीनों ने कर्ज का बोझ और बढ़ा दिया है, जिससे आत्महत्या की घटनाएं बढ़ने लगी हैं।

1.4 जल पर प्रभाव :

शुरुआत में हरित क्रांति का पूरा ध्यान उच्च–उत्पादन वाली किस्मों (HYV) पर था जिन्हें देशी किस्मों से कहीं ज्यादा पानी की जरूरत पड़ती थी। इस जरूरत को पूरा करने के लिए नई सिंचाई की योजनाएं लागू की गईं। नई सिंचाई नीति तुलनात्मक रूप से मंहगी थी। अनुपयुक्त सिंचाई योजनाओं के कारण खारेपन की समस्या बढ़ने लगी। पानी की जरूरतों को पूरा करने के लिए बांधों के निर्माण को एक विकल्प के रूप में देखा जाने लगा, क्योंकि भारत में कई इलाकों में बारिश कम होती है और ये इलाके नदियों से जुड़े हुए भी नहीं हैं। इन बड़े बांधों के निर्माण ने न सिर्फ स्थानीय लोगों को विस्थापित किया (उचित मुआवजा दिए बिना), बल्कि उनकी वजह से बड़ी मात्रा में उपजाऊ जमीन और पारिस्थितिकी व्यवस्था पानी में डूब गई।

सिंचाई की नहर वाली व्यवस्था में जलभराव एक गंभीर समस्या है, जो न सिर्फ खेती की जमीन को बर्बाद कर देता है बल्कि प्रकृति का संतुलन भी बिगाड़ देता है। पंजाब से राजस्थान तक की भारत की सबसे बड़ी सिंचाई परियोजनाओं में से एक – इंदिरा गाँधी नहर – एक बेहतरीन उदाहरण है जहां जलभराव एक बहुआयामी समस्या है। राजस्थान के जैसलमेर, गंगानगर और बीकानेर जैसे कई जिलों में कई हजार एकड़ की उपजाऊ जमीन और चरागाहों में पानी भर गया। नहर से प्राप्त सिंचाई की मदद से कई किसान चरागाह भूमि में गेहूं, चावल और कपास उगाने लगे।[19] बड़े किसानों का इसमें फायदा है क्योंकि वे नहर से सिंचाई का खर्च उठा सकते हैं, जबकि छोटे किसान सिंचाई के लिए या तो बारिश पर निर्भर रहते हैं या उन्हें किसी से ऊँची ब्याज दर पर कर्ज लेना पड़ता है।

1.5 भू–जल पर प्रभाव

कम बारिश वाले इलाकों में या जहां नहर व्यवस्था नहीं थी, HYV फसलों के लिए जमीन के नीचे के पानी का इस्तेमाल होने लगा। हरित क्रांति के तहत गेंहू और धान के इलाकों को प्रभावी रूप से बढ़ाया गया। धान को

[19] *http://www.yourarticlelibrary.com/green-revolution/ecological-problems-emerged-out-of-the-green-revolution-in-india/44554*

बहुत ज्यादा पानी चाहिए होता है। एक अच्छी फसल के लिए इसे 100 सें.मि. बारिश की जरूरत होती है। धान की खेती राजस्थान, पंजाब और हरियाणा जैसे इलाकों में होने लगी जहाँ 50 सें.मि. से भी कम बारिश होती है। इन इलाकों में किसान धान की रोपाई जून के महीने में सिंचाई की मदद से करते हैं जब वहां का तापमान 42°C होता है।[20] इन इलाकों में पानी का जलस्तर तेजी से गिरने लगा। आधे पंजाब में पानी का स्तर 15 से 30 मीटर नीचे चला गया है। यहां तक की 'पंजाब सिंचाई विभाग' (Punjab Irrigation Department) की नई रिपोर्ट के अनुसार, भू–जल स्तर में 1980–1990 के बीच औसत 20 सें.मि. प्रति वर्ष की गिरावट; 1990–2000 के बीच 25 सें.मि. की, 2005–2008 के बीच 75 सें.मि. की, 2008–2013 के बीच 45 सें.मि. की और 2014–2015 में 70 सें.मि. की गिरावट देखी गई।[21]

ऐसे उदहारण भी सामने आये हैं जहां नहरों से जुड़े इलाकों में अत्यधिक सिंचाई के कारण तेजी से भू–जल स्तर बढ़ा है। यह स्थिति भी मिट्टी के लिए अच्छी नहीं है, क्योंकि ऐसे में बहुत सारा पानी भाप बनकर निकल जाता है और मिट्टी लवणीय और क्षारीय हो जाती है।

1.6 स्वास्थ्य पर प्रभाव

हरित क्रांति में ज्यादा पानी के साथ–साथ भारी मात्रा में रसायनिक खाद का इस्तेमाल होने लगा। ज्यादा पानी और खाद ने कीट–पतंगों के पनपने के लिए उपयुक्त स्थिति पैदा कर दी। इससे और ज्यादा रासायनिक कीटनाशक और फफूंदनाशकों की मांग बढ़ गई। इन सबका किसान और उपभोक्ता दोनों के स्वास्थ्य को गंभीर नुकसान पहुंचने लगा।

पौध–सुरक्षण रसायन कृतिम रूप से तैयार किये जाते हैं जो अनचाहे घास–पात को खत्म करके फसल की पैदावार बढ़ाते हैं। ये रसायन जहरीले होते हैं और इंसानों और जानवरों के लिए नुकसानदायक होते हैं। फिर भी उत्पादन और मुनाफा बढ़ाने के लिए किसान इन रसायनों का प्रयोग सिर्फ फसलों पर ही नहीं बल्कि सब्जियां और फल (जैसे अमरुद, सेब, संतरे और लीची) पर करने लगे।

'भारतीय स्वास्थ्य शोध संस्थान' (Indian Council of Medical Research – ICMR) ने एक शोध में पाया कि ग्रामीण दुधारू पशुओं के दूध में DDT और अन्य कीटनाशको के अवशेष मौजूद हैं। चावल, गेंहू, मक्का, सरसों, कपास, तिल, फल और सब्जियों में भी शीशा, तम्बा, जस्ता, कैडमियम और आर्सेनिक के सुराग पाए गए हैं।[22]

जहरीले रसायनों के प्रयोग, जैसे गैनो–क्लोरिन, गेमेक्सीन और DDT ने मानव और प्रकृति पर बड़ा बुरा प्रभाव डाला है। फफूंदनाशक और शाकनाशकों के इस्तेमाल ने फफूंद और घास–पात का संतुलन बिगाड़ दिया है। उत्पादन बढ़ाने की होड़ में हमने कई बड़ी समस्याओं को न्यौता दे दिया।[23]

---

[20] *ibid.*

[21] *http://www.tribuneindia.com/news/nation/north-india-running-out-of-water-confirms-nasa/120110.html*

[22] *http://www.yourarticlelibrary.com/green-revolution/ecological-problems-emerged-out-of-the-green-revolution-in-india/44554/*

[23] *http://digitalcommons.unl.edu/cgi/viewcontent.cgi?article=1027&context=envstudtheses*

2. ''पूर्वी भारत में हरित क्रांति'' की शुरुआत

हरित क्रांति के पहले चरण में शुरुआती दशकों में पैदावार तो बढ़ी पर वह खाद्य की आत्मनिर्भरता के अपने वादे को पूरा नहीं कर पाया। ऊपर से इससे मिट्टी और वातावरण को काफी नुकसान पहुंचा। क्षेत्रीय स्तर पर देखा जाए तो केवल पंजाब और हरियाणा में ही हरित क्रांति के बाद खाद्यान्न उत्पादन में बढ़ौतरी हुई। भारत के पूर्वी क्षेत्र, गंगा के समतल इलाकों में, पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिम बंगाल में कोई खास असर नहीं दिखा।

फायदे के बजाय, हरित क्रांति ने नई समस्याएं खड़ी कर दी हैं। खास तौर से इसने श्रम और रोजगार गतिशीलता को बदल दिया, जिसने बड़ी संख्या में किसानों को शहरों की ओर पलायन करने को मजबूर कर दिया। रसायन के बढ़ते प्रयोग से स्वास्थ्य और वातावरण पर गहरा असर पड़ा। अत्यधिक सिंचाई के कारण मिट्टी में खारापन बढ़ा है। उच्च–उत्पादन वाली किस्मों (HVY) के कारण महत्वपूर्ण अनुवंशिक क्षरण (genetic erosion) भी हुआ है।

पूर्वी क्षेत्र, जो आजादी से पहले देश का सबसे विकसित और समृद्ध क्षेत्र था, आज कई तरह के जैव–भौतिक (bio-physical), संस्थानिक और सामाजिक–आर्थिक अवरोधों से जूझ रहा है। इस वजह से यहां कम उत्पादन और कम जोखिम भरी एक खास तरह की निर्वाही खेती सामने आई है। यहां खेतों का औसत आकार, सिंचाई क्षेत्र, कृषि में खाद और ऊर्जा की औसत खपत – ये सभी राष्ट्रीय औसत से कम है। पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश की तुलना में तो और भी कम है। उड़ीसा और बिहार में खाद की खपत बहुत कम है क्योंकि यहां के अधिकतर किसान पारंपरिक पद्धति से खेती करते आए हैं।

इन राज्यों की मिट्टी और आबोहवा कई तरह की सब्जियों के उत्पादन के लिए उपयुक्त है। भंडारण, पैकेजिंग, परिवहन, व्यवस्थित खरीद–फरोख्त व्यवस्था और कटाई के बाद की प्रबंधन व्यवस्था जैसी मूलभूत आधारिक संरचना की कमीं के बावजूद भी सब्जी उत्पादन में बिहार का देश में तीसरा स्थान है (16325.7 MT) जो बिना कृत्रिम खाद, कीटनाशक, शाकनाशक और भारी मशीनों के प्रयोग के सब्जियों का उत्पादन करता है। यहां तक कि भारत के 2 सबसे ज्यादा सब्जी उत्पादक राज्य पश्चिम बंगाल (25466.8 MT) और उत्तर प्रदेश (19571.6 MT) में भी खेती मूल रूप से पारंपरिक खेती और बागवानी पर आधारित है। इन इलाकों में भारी मशीनों और तकनीकों का भी उपयोग ज्यादा नहीं है। पंजाब और हरियाणा तो आज तक भारत के 10 प्रमुख सब्जी उत्पादक राज्यों में भी अपना स्थान नहीं बना पाए हैं। यह सराहनीय है कि उत्तर प्रदेश और बिहार के किसान पारंपरिक ढंग से खेती करते हुए भी अच्छा उत्पादन किए जा रहे हैं। इनकी खेती में लागत बहुत कम है और ये मौसम और जलवायु के अनुरूप सब्जियां लगाते हैं तथा अपने ही बचाए बीजों का प्रयोग करते हैं।

खेती का यह तरीका एक तरह की सामाजिक स्थिरता तो देता ही है साथ ही भोजन में पौष्टिकता का भी ध्यान रखता है। फल–सब्जियों से अनाज का आदान–प्रदान एक ऐसे सामाजिक ताने–बाने को बनाता है जो

किसी भी पारंपरिक समाज के लिए सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है। कम लागत होने की वजह से किसान फसल का नुकसान हाने पर भी कर्ज में नहीं डूबते। यहां के किसान अपना बीज खुद बचाते हैं। इन्हीं कारणों से इन इलाकों में आत्महत्या की घटना कम सुनने को मिलती है।

मसालों के उत्पादन में भी ये राज्य पंजाब, हरियाणा और महाराष्ट्र से आगे हैं। उत्तर प्रदेश सरसों तेल का सबसे बड़े उत्पादकों में से एक है, बिहार दूसरे और आंध्र प्रदेश तीसरे स्थान पर है। हम जानते हैं कि पूर्वी और पश्चिमी भारत में सरसों का तेल सबसे पसंदीदा खाने का तेल है और वसा का मूल स्रोत भी है, क्योंकि यहां की अधिकतर जनसंख्या घी और मक्खन खरीदने में अक्षम है। यहां तक कि हल्दी के उत्पादन में भी पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश और बिहार शीर्ष 10 की सूची में है। पश्चिम बंगाल हल्दी का पांचवा सबसे बड़ा उत्पादक है और बिहार और उत्तर प्रदेश 9वें व 10वें स्थान पर हैं।

लहसुन के मामले में उत्तर प्रदेश पांचवें और बिहार दसवें स्थान पर है। मिर्च उत्पादन में यदि हम दक्षिण भारत और गुजरात को छोड़ दें तो उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल और बिहार चोटी के उत्पादक राज्यों में आते हैं।

सरकारी रिपोर्ट के अनुसार, बिहार सालाना 15,081 हेक्टेयर जमीन में 20 हजार टन मसाले की पैदावार करता है। अदरक, हल्दी, मिर्च, धनिया और लहसुन इनमें प्रमुख हैं। मसाले उगाने के इलाकों का 47.6 प्रतिशत हिस्सा मिर्च की खेती का है जहां 39.5 प्रतिशत उत्पादन होता है। इसके बाद हल्दी का स्थान आता है जिसकी खेती 26.3 प्रतिशत जमीन में होती है और यहां राज्य का कुल 36.4 प्रतिशत हल्दी का उत्पादन होता है। हरित क्रांति का सब्जियां और मसालों से कोई लेना देना नहीं है।

'पूर्वी भारत में हरित क्रांति की शुरुआत' (BGREI), यह योजना 2011 में शुरू हुई। उत्तर, पश्चिम और पूर्वी भारत में खाद्यान्न उत्पादन, जल संसाधन प्रबंधन के मौजूदा स्थिति को समझने के लिए वर्ष 2009 में बने एक कार्य दल (task force) की रिपोर्ट पर यह योजना आधारित थी।

BGREI को पूर्वी भारत के 7 राज्यों के संग शुरू किया गया, जिसके नाम हैं – असम, बिहार, छत्तीसगढ़, झारखंड, पूर्वी उत्तर प्रदेश, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल। इस कर्मी दल की मुख्य सिफारिशें थीं – चावल का उत्पादन बढ़ाने के लिए पानी का और ज्यादा उपयोग करना (जिसका इस्तेमाल सही तरह से नहीं हो रहा है); और अत्याधुनिक तकनीकों का प्रचार–प्रसार करना।

BGREI का मुख्य लक्ष्य :[24]

1. अत्याधुनिक तकनीकों द्वारा धान और गेहूं का उत्पादन बढ़ाना;
2. परती जमीन में धान की खेती को प्रोत्साहित करना और गहन खेती करना;
3. जल संचयन ढांचे का निर्माण और जल का कुशल उपयोग करना; और
4. कटाई के बाद की तकनीक और बाजार समर्थन को प्रोत्साहित करना।

[24] *http://krishikosh.egranth.ac.in/bitstream/1/5810029612/1/Rajeeb%20M.Sc.%20Thesis.pdf*

जमीनी स्तर पर इन लक्ष्यों को लागू करने के लिए केंद्र सरकार ने निम्नलिखित गतिविधियों के लिए फण्ड का आवंटन किया :[25]

1.	ब्लाक / समूह प्रदर्शनी	40 प्रतिशत
2.	बीज वितरण (HYV/संकर)	10 प्रतिशत
3.	बीज उत्पादन (HYV/संकर)	05 प्रतिशत
4.	आवश्यकता आधारित कृषि सामग्री	10 प्रतिशत
	■ सूक्ष्म पोषक तत्व तथा मिट्टी सुधार	05 प्रतिशत
	■ पौधे की सुरक्षा के रसायन	04 प्रतिशत
	■ फसल पद्धति आधारित प्रशिक्षण	01 प्रतिशत
5.	संपत्ति निर्माण (मशीनें और औजार, सिंचाई के उपकरण)	20 प्रतिशत
6.	खेतों में की जाने वाली खास क्रियाएं	10 प्रतिशत
7.	कटाई उपरान्त प्रबंधन सहित बाजार समर्थन	05 प्रतिशत

[25] *http://nfsm.gov.in/State_Action_Plans/2016-17/preparation%20of%20Action%20Plan%20-%20BGREI%20-%2028.04.2016.pdf*

3. पूर्वी भारत में खेती का मौजूदा दृश्य

3.1 मुख्य फसलें

पूर्वी राज्य भारत में धान उत्पादन का सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जहां देश का 63.3 प्रतिशत धान होता है। यहां केवल 35 प्रतिशत लोग रहते हैं, पर चावल की खपत यहां 49 प्रतिशत है। इस इलाके में चावल की खपत 133 किलो प्रति व्यक्ति सलाना है; जबकि पश्चिमी क्षेत्र में मात्र 37 किलो, उत्तर क्षेत्र की 39 किलो, और दक्षिणी क्षेत्र में 113 किलो है। वर्ष 2011–12 में सात में से छह पूर्वी राज्यों का औसत चावल उत्पादन 1.7 टन प्रति हेक्टेयर था। भारत में चावल के कुल 2.65 करोड़ हेक्टेयर के वर्षा आधारित क्षेत्र में से लगभग 78.7 प्रतिशत (2.11 करोड़ हेक्टेयर) पूर्वी क्षेत्र में है। अगर इस क्षेत्र में चावल के उत्पादन में आधा टन प्रति हेक्टेयर की मामूली बढ़ोत्तरी हो जाए तो पूरे भारत का चावल उत्पादन 1 करोड़ टन से बढ़ जाएगा।[26]

इस क्षेत्र की मुख्य फसलें हैं – चावल, मक्का, दालें, सरसों व अन्य खाने योग्य तेल, आलू, जूट, गन्ना इत्यादि। दूसरी हरित क्रांति में चावल और मक्के की फसल के ऊपर सारा ध्यान केंद्रित है।

3.2 जल का उपयोग

अच्छी बारिश, पर्याप्त जमीन, भू–जल संसाधन, मजदूरों की प्रचुरता, भूमि उपयोग, फसलों में विविधता के बावजूद फसलों की पैदावार और कृषि भूमि से आय घटती जा रही है। नहरों, संचालन नालों, चेक डेम जैसी सिंचाई की उपयुक्त संरचना नहीं होने के कारण बरसात का पानी समुचित उपयोग नहीं हो पा रहा है।[27] बरसात के मौसम में जल संसाधन बेतरतीब ढंग से फैल जाते हैं और नियंत्रण न होने की वजह से बाढ़ का रूप ले लेते हैं और गर्मी के मौसम के लिए पानी नहीं बच पाता, जिससे सूखा की स्थिति पैदा हो जाती है।

पूर्वी क्षेत्र में कई विकास कार्यक्रम – जैसे 'नियंत्रण क्षेत्र विकास कार्यक्रम' (Command Area Development Programme), सूखाग्रस्त क्षेत्र विकास योजना (Drought Prone Area Development Programme), और 'विस्तृत क्षेत्र विकास योजना' (Comprehensive Area Development Programme), – चलाए गए पर अनुचित योजना, अपर्याप्त देख–रेख, बेअसर क्रियान्वयन और नियंत्रण की वजह से इनमें से अधिकतर सरकारी योजनाओं से कोई खास संतोषजनक परिणाम नहीं मिला।

एक तरफ उत्तर और पश्चिम के कुछ राज्यों में भू–जल का दोहन अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया है तो वहीं उड़ीसा में भू–जल का उपयोग का स्तर केवल 8 प्रतिशत है; पश्चिम बंगाल में 24 प्रतिशत; बिहार में 25 प्रतिशत; और उत्तर प्रदेश में 32 प्रतिशत है। खेती की पद्धति और आधुनिक तकनीकों का चुनाव करने के लिए पानी एक मुख्य घटक है।

3.3 ऋण की उपलब्धता

बड़ी संख्या में आर्थिक/वित्तीय संस्थान और अनेकों आर्थिक सुधारों के बावजूद यह चिंताजनक है कि पूर्वी

---

[26] *IRRI. (2002). "Constraints in Rainfed Rice Farming in Eastern India", Report on Rainfed Rice, International Rice Research Institute (IRRI), Philippines, 2002.*

[27] *Ghosh, Madhusudan. Sarkar, Debashis. Roy, Bidhan Chandra (ed.) (2015). "Diversification of Agriculture in Eastern India". Springer, 2015*

भारत में ऋण उपलब्धता मात्र 3946.87 रुपये प्रति हेक्टेयर है जबकि पूरे भारत का औसत 9131.00 रुपये प्रति हेक्टेयर है।[28] कुछ राज्यों की स्थिति और भी गम्भीर है, जैसे वर्ष 2005–06 में बिहार, छत्तीसगढ़ और झारखंड में ऋण उपलब्धता 3000 रुपये प्रति हेक्टेयर से भी कम थी।

3.4 भूमि उपयोग का स्वरूप

देश की कुल 16.61 करोड़ हेक्टेयर कृषि योग्य जमीन में से 2.42 करोड़ हेक्टेयर (14.56 प्रतिशत) परती जमीन है। कुल 8.26 करोड़ हेक्टेयर (सकल फसल क्षेत्र (Gross Cropped Area) का 42.86 प्रतिशत) सिंचित जमीन है, पर दूसरी फसल केवल 5.09 करोड़ हैक्टेयर (कूल बोया क्षेत्र (Net Sown Area) का 35.88 प्रतिशत) में ही होती है।[29]

पूर्वी क्षेत्र में कुल कृषि योग्य जमीन का 14.21 प्रतिशत परती जमीन है और सिंचाई की सुविधा सकल फसल क्षेत्र (GCA) के 47.76 प्रतिशत इलाके में ही उपलब्ध है। हालांकि पूर्वी क्षेत्र में भारत के कुल कृषि योग्य भूमि का केवल 22.32 प्रतिशत हिस्सा आता है, पर तब भी कुल बोया क्षेत्र (Net Sown Area), रबी फसल क्षेत्र, सकल सिंचित क्षेत्र (Gross Irrigated Area) और फसल तीव्रता (cropping intensity) पूर्वी क्षेत्र में कहीं ज्यादा है।

पूर्वी राज्यों में सबसे ज्यादा परती जमीन झारखंड (53.4 प्रतिशत) में है, जिसके बाद उड़ीसा (13.0 प्रतिशत) का नंबर आता है। इसी तरह फसल तीव्रता (cropping intensity) 102.74 प्रतिशत (पूर्वी उत्तर प्रदेश) से लेकर 180.04 प्रतिशत (पश्चिम बंगाल) के बीच है।

तालिका 4 से पूर्वी भारत के साथ–साथ पूरे भारत के भूमि उपयोग का विवरण मिलता है।

तालिका 4 : पूर्वी क्षेत्र और पूरे भारत में 2005–2006 में भूमि उपयोग का विवरण

क्र.	विवरण	पूर्वी भारत	सकल भारत	भारत में पूर्वी क्षेत्र का प्रतिशत
1	कृषि योग्य भूमि	37.07	166.07	22.32
2	कुल बोया क्षेत्र (Net Sown Area)	31.80	141.89	22.41
3	परती जमीन (Fallow Land)	5.27	24.18	21.79
4	कृषि योग्य भूमि में परती जमीन का प्रतिशत	14.21	14.56	–
5	रबी फसल क्षेत्र (Rabi cropped area)	12.07	50.90	23.71
6	शुद्ध सिंचित क्षेत्र (Net irrigated area)	14.15	60.20	23.50
7	कुल सिंचित क्षेत्र (Gross irrigated area)	20.13	82.62	24.36
8	फसल तीव्रता (cropping intensity)	137.95	135.87	–
9	सिंचित क्षेत्र में कुल बोया क्षेत्र का प्रतिशत	47.46	42.86	–

Source : Centre for Monitoring India Economy (CMIE), Various Issues, Directorate of Economics & Statistics, Various State Governments

[28] *http://www.springer.com/cda/content/document/cda_downloaddocument/9788132219965-c1.pdf?SGWID=0-0-45-1474905-p176821639*

[29] *Ghosh, Madhusudan. Sarkar, Debashis. Roy, Bidhan Chandra (ed.) (2015). "Diversification of Agriculture in Eastern India". Springer, 2015*

3.5 फसलों की उत्पादकता

तालिका 5 से वर्ष 2005–2006 में पूर्वी भारत के साथ–साथ पूरे भारत में फसल की उत्पादकता के आंकड़े मिलते है। लगभग सभी फसलों में पूर्वी क्षेत्र बाकी भारत से पीछे है। सिर्फ आलू के मामले में पूर्वी क्षेत्र बाकी भारत से थोड़ा आगे है।[30]

तालिका 5 : पूर्वी क्षेत्र और पूरे भारत में 2005–2006 में फसलों की उत्पादकता (क्विंटल प्रति हेक्टेयर)

क्र.	विवरण	पूर्वी भारत	सकल भारत
1. खाद्यान्न फसलें			
(i)	अनाज (cereals)	17.75	19.92
(ii)	चवल	18.74	21.03
(iii)	गेंहू	17.25	26.19
2. गैर–खाद्यान्न फसलें			
(i)	तिलहन	7.44	10.04
(ii)	गन्ना	540.81	669.28
(iii)	आलू	197.68	185.92
(iv)	अदरक	18.39	35.37
(v)	हल्दी	21.92	49.52
(vi)	लहसुन	28.98	44.34

Source : Centre for Monitoring India Economy (CMIE), Various Issues, Directorate of Economics & Statistics, Various State Governments

देश की प्रमुख फसलों की उत्पादकता में राज्यों के बीच बड़ा अंतर है। योजना आयोग के 2003–2005 के आंकड़ों से पता चलता है कि फसल पैदावार में अंतर – मक्का में 7 प्रतिशत (गुजरात) से लेकर 300 प्रतिशत (असम) तक, ज्वार 13 प्रतिशत (मध्यप्रदेश) से लेकर 200 प्रतिशत (कर्नाटक) तक, सरसों में 5 प्रतिशत (हरियाणा) से लेकर 150 प्रतिशत (छत्तीसगढ़) तक, सोयाबीन में 7 प्रतिशत (राजस्थान) से लेकर 185 प्रतिशत (कर्नाटक) तक, और गन्ना में 16 प्रतिशत (आंध्र प्रदेश) से लेकर 167 प्रतिशत (मध्य प्रदेश) तक का अंतर है।[31]

---

[30] *http://www.springer.com/cda/content/document/cda_downloaddocument/9788132219965-c1.pdf?SGWID=0-0-45-1474905-p176821639*

[31] *Karmakar, K.G. and Sahoo, B.B. (2015). "Green Revolution in Eastern India", in the edited book by M. Ghosh, D. Sarkar and B.C. Roy, "Diversification of Agriculture in Eastern India", Springer, 2015.*

4. पूर्वी भारत में संकर बीजों की लोकप्रियकरण

4.1 संकर धान का लोकप्रियकरण

भारत में धान की 2 लाख से भी ज्यादा किस्में मौजूद हैं, जो पूरे विश्व में सबसे ज्यादा हैं।[32] तालिका 6 में धान की खेती का क्षेत्रफल, उत्पादन, और उत्पादकता से जुड़े आंकड़े हम देख सकते हैं।

तालिका 6 : चावल का क्षेत्रफल, उत्पादन और उत्पादकता (2010–2011 से 2013–2014 तक)

(क्षेत्रफल = लाख हेक्टेयर; उत्पादन = लाख टन; उत्पादकता = किलोग्राम प्रति हेक्टेयर)

	2010–2011			2011–2012			2012–2013			2013–2014		
	क्षेत्रफल	उत्पादन	उत्पादकता	क्षेत्रफल	उत्पादन	उत्पादकता	क्षेत्रफल	उत्पादन	उत्पादकता	क्षेत्रफल	उत्पादन	उत्पादकता
आंध्र प्रदेश	47.51	144.18	3035	40.96	128.95	3146	36.3	115.1	3173	43.6	127.2	2920
असम	25.704	47.366	1843	25.37	45.163	1780	24.9	51.3	2061	24.5	49.3	2012
बिहार	28.325	31.02	1095	33.24	71.626	2155	33.0	75.3	2282	31.3	55.1	1759
छत्तीसगढ़	37.025	61.59	1663	37.738	60.284	1597	37.8	66.1	1746	38.0	67.2	1767
गुजरात	8.08	14.966	1852	8.36	17.9	2141	7.0	15.4	2198	7.9	16.4	2076
हरयाणा	12.45	34.72	2789	12.35	37.59	3044	12.2	39.8	3272	12.3	40.0	3256
झारखण्ड	7.203	11.1	1541	14.69	31.306	2131	14.1	31.6	2238	12.6	28.1	2239
कर्नाटक	15.4	41.88	2719	14.16	39.55	2793	12.8	33.6	2632	13.4	35.7	2664
केरल	2.132	5.228	2452	2.082	5.69	2733	2.0	5.1	2577	2.0	5.1	2558
मध्य प्रदेश	16.029	17.721	1106	16.62	22.273	1340	18.8	27.7	1474	19.3	28.4	1474
महाराष्ट्र	15.18	26.96	1776	15.41	28.41	1841	15.6	30.6	1963	16.1	31.2	1938
उड़ीसा	42.257	68.277	1616	40.045	58.07	1450	40.2	73.0	1814	41.8	76.1	1821
पंजाब	28.31	108.37	3828	28.18	105.42	3741	28.5	113.7	3998	28.5	112.7	3953
तमिल नाडु	19.057	57.924	3040	19.038	74.587	3918	14.9	40.5	2712	17.3	53.5	3101
उत्तर प्रदेश	56.57	119.92	2120	59.47	140.22	2358	58.6	144.2	2460	59.8	146.4	2447
पश्चिम बंगाल	49.442	130.45	2639	54.337	146.058	2688	54.4	150.2	2760	55.1	153.7	2788
अन्य	11.13	24.88	–	11.13	24.90	–	16.4	39.2	–	18.0	40.6	–
सकल भारत	**428.62**	**959.79**	**2239**	**440.06**	**1053.12**	**2393**	**427.5**	**1052.4**	**2462**	**441.4**	**1066.5**	**2416**

Source: Agricultural Statistics at a Glance 2012, 2013, 2014 and 2015

[32] *Sahai, Suman. (2014). "Custodian Farmers are the Real Seed Saviours", The Hindu Survey of Indian Agriculture, 2014.*

तालिका 6 से पता चलता है कि पश्चिम बंगाल को छोड़कर अन्य सभी पूर्वी राज्य, जैसे बिहार, असम, झारखण्ड और उड़ीसा में धान की उत्पादकता राष्ट्रीय औसत से कम है। उड़ीसा में लगभग 42 लाख हेक्टेयर भूमि में धान के खेती होती है। खरीफ के मौसम में 39.33 लाख हेक्टेयर में धान की खेती होती है जबकि रबी में केवल 2.93 लाख हेक्टेयर में धान लगाई जाती है। वर्ष 2013–2014 में धान की उत्पादकता 1.821 टन प्रति हेक्टेयर थी, जो राष्ट्रीय औसत (2.416 टन प्रति हेक्टेयर) से काफी कम थी।

राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (RKVY) की मदद से धान के साथ–साथ दलहन और मक्का की उत्पादकता को उड़ीसा, बिहार, छत्तीसगढ़, पश्चिम बंगाल और पूर्वी उत्तर प्रदेश के राज्यों में बढ़ाने की कोशिश की जा रही है। इसके लिए पैसों के आवंटन को वर्ष 2013–2014 में बढ़ाकर 9000 करोड़ रुपये कर दिया गया जो वर्ष 2007–2008 में केवल 1475 करोड़ रुपये था। इसी दौरान उड़ीसा और बिहार में भी फण्ड का आवंटन 47 करोड़ रुपये और 64 करोड़ रुपये से बढ़ाकर क्रमशः 503 करोड़ रुपये और 724 करोड़ रुपये कर दिया गया।

संकर धान की खेती की लोकप्रिय बनाने के लिए निजी और बहुराष्ट्रीय बीज कंपनियों को अखबारों में विज्ञापन देकर भाग लेने का न्योता दिया गया। कृषि निदेशालय (Directorate of Agriculture) को नोडल एजेंसी बनाया गया और संबंधित जिलों की 'कृषि तकनीक प्रबंधन एजेंसी' (ATMA – Agriculture Technology Management Agencies) को एनजीओ और बीज कंपनियों की मदद से इसके क्रियांवयन का कार्य सौंपा गया। एनजीओ को बीज वितरण के लिए चुने गए किसानों की सूची तैयार करने का काम सौंपा गया। परिशिष्ट 1 में संकर धान बीज की सभी बड़ी कंपनियों और उनके बीजों के नाम हैं।[33] अंततः तीन कंपनियां को संकर धान के बीज बांटने के लिए अनुमोदित किया गया जिनका विवरण तालिका 7 में दिया गया है।

तालिका 7 : चयनित बीज कंपनियां और उनके ब्रांड (धान)

क्र.	कंपनी	संकर धान बीज का नाम
1.	देवजन बीज कंपनी प्र॰ लि॰ (DevGen Seeds Pvt. Ltd.)	PRH-122 (Ganga) (गंगा)
2.	जे.के. एग्री जेनेटिक्स लि॰ (J.K. Agri Genetics Ltd.)	JKRH-401 & DRRH-3
3.	यू.पी.एल. एडवांटा लि॰ (UPL Advanta Ltd.)	PAC-853

Source: Directorate of Agriculture and Food Production, Odisha, Bhubaneswar

केवल संकर धान को लोकप्रिय बनाने के लिए प्रति हेक्टेयर 8232 रुपये खर्च किये गये जबकि इसमें न तो संकर बीज का खर्च शामिल है (जिसकी कीमत 2000 रुपये प्रति हेक्टेयर है) और न ही सिंचाई का खर्च जुड़ा है।

भारत में करीब 65 प्रतिशत आबादी का मुख्य भोजन चावल है। विश्व में चावल के उत्पादन और खपत में भारत का दूसरा स्थान है। वर्ष 2011–2012 में चावल का उत्पादन 10 करोड़ टन के आंकड़े को पार कर

[33] *Living Farm, "www.livingfarm.org"*

गया। जहां तक उत्पादकता का सवाल है वह वर्ष 2004–2005 में 1984 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर था जो वर्ष 2013–14 में बढ़कर 2416 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर हो गया।

4.2 संकर धान पूर्वी राज्यों में व्यावहारिक क्यों नहीं है ?

भारत में संकर धान की खेती का इलाका केवल 3.5 प्रतिशत है, जबकि चीन में यह 60 प्रतिशत है।[34] ऐसे कई कारण है जिसके वजह से पूर्वी राज्यों में संकर धान की स्वीकार्यता कम है :

- संकर धान से थोड़ी ज्यादा पैदावार तो होती है लेकिन यही बस एक मापदण्ड नहीं हो सकता; इससे धान उत्पादन व्यवस्था में स्थिरता डगमगा जाती है।
- संकर बीजों की गुणवत्ता और उपलब्धता एक गंभीर मुद्दा है।
- प्रति इकाई क्षेत्र में संकर बीज की अधिकतम पैदावार कम है।
- बाहरी सामग्री और लागत खर्च बहुत ज्यादा है।
- संकर धान के लिए बेहतर सिंचाई की व्यवस्था चाहिए जो हर इलाके में संभव नहीं है।
- दूसरी हरित क्रांति (BGREI) का लक्ष्य सहभागिता या पी.पी.पी. (पब्लिक–प्राईवेट पार्टनरशिप) मॉडल के जरिए प्रमाणित बीजों के उत्पादन और वितरण को प्रोत्साहित करना है। परन्तु पी.पी.पी. मॉडल कभी भी किसानों के हित में नहीं होंगे और वे बीज संप्रभुता को खत्म करके किसानों को हर साल नए संकर बीज बाजार से खरीदने के लिए बाध्य करेंगे। इस तरह किसान को बीजों के लिए इनके ऊपर हमेशा निर्भर रहना पड़ेगा।
- पी.पी.पी. मॉडल से सिर्फ निजी बीज कंपनियों को फायदा पहुंचेगा और बीज बाजार के ऊपर इनका एकाधिकार हो जाएगा। एक बार अगर बीज कंपनियों का एकाधिकार हो गया तो वे सरकार को भी अपने हिसाब से चला सकती हैं।
- पी.पी.पी. मॉडल केवल बीज कंपनियों का पक्षधर होगा। यदि पैदावार कम हो गई या फसल खराब हो गई या कोई और कमी आ गई है, तो इस योजना में किसानों को बचाने के लिए कोई प्रावधान नहीं है।
- छोटे किसानों के हित को ताक पर रखकर, संबंधित विभागों के सरकारी अधिकारी निजी बीज कंपनियों को मुफ्त में विस्तार सेवाएं (extension services) दे रहे हैं जिससे वे संकर धान के बीज का प्रचार कर सकें।

4.3. उड़ीसा में संकर मक्के का लोकप्रियकरण

उड़ीसा में करीब 2.50 लाख हेक्टेयर भूमि में मक्का उगाया जाता है। खरीफ में अकेले मक्का ही करीब 90 प्रतिशत खेतों में बोया जाता है। इसकी खेती खासकर गंजम, गजपति, केओंझर, नबरंगपुर, मयूरभंज और कालाहांडी जिलों में होती है।

---

[34] *Devgen. (2011). "Devgen's Strategy: Build the Next Generation of Hybrid Rice", Devgen Annual Report, 2011, Belgium.*

उड़ीसा के कृषि निदेशालय (Directorate of Agriculture) के अनुसार, मक्का उगाने के 3 बड़े फायदे हैं। पहला, यह एक प्रमुख फसल है और इसे पानी की जरूरत कम पड़ती है; दूसरा, इसे भोजन और चारा दोनों के रूप उपयोग किया जा सकता है; और तीसरा, इस फसल में लागत कम और मुनाफा ज्यादा होता है।

राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (RKVY) के अंतर्गत एक विशेष मक्का योजना चलाई जा रही है जिसका उद्देश्य किसानों को धान की खेती से दूर करके मक्के की खेती की ओर ले जाना है। निजी कंपनियों के लगातार प्रचार से भारत में मक्के की खेती काफी तेजी से फैल रही है।

वर्ष 2010 में BGREI के अंतर्गत सरकार ने प्रमुख बीज कंपनियों के साथ पी.पी.पी. मॉडल का समझौता किया और 21 जिलों में संकर मक्का की आपूर्ति का सारा दायित्व इन कंपनियों को सौंप दिया।

वर्ष 2010 में खरीफ के दौरान उड़ीसा राज्य के 30,000 हेक्टेयर भूमि में 'प्रोजेक्ट सुनहरे दिन' (Project Golden Days) चलाया गया। इनमें से 8000 हेक्टेयर भूमि के लिए मोंसेंटो इंडिया लिमिटेड (MIL) साझेदार था, जो बोलंगीर, कालाहांडी, नयागढ़, नौपद, और खुरदाह जैसे आदिवासी जिलों में आती है।

इसके अलावा एक और 9000 हेक्टेयर भूमि के लिए पायनियर सीड्स के साथ समझौता किया गया जो गजपति, रायगढ़ा, गंजम, मयूरभंज, संबलपुर और बारगढ़ जिलों में आती है। इस योजना के तहत किसानों को उच्च–उत्पादन वाले मक्के के संकर बीज बांटे गए और उन्हें उन्नत कृषि पद्धतियों के बारे में प्रशिक्षण दिया गया।[35]

केंद्र सरकार की राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (RKVY) के अंतर्गत उड़ीसा सरकार ने राज्य में ही संकर बीज उत्पादन का कार्यक्रम चलाया। बीज उत्पादन का ठेका बीज कंपनियों को दिया गया और इस स्कीम में भाग लेने वाले किसानों को राज्य सरकार ने सब्सिडी दी।[36]

पी.पी.पी. मॉडल के अंतर्गत, सरकार ने नीचे दी गई तालिका 8 में सूचीबद्ध कंपनियों से बीज खरीदे और उन्हें किसानों में मुफ्त बांटा। पर बाद में किसानों को बीज खरीदना पड़ रहा है।

तालिका 8 : चयनित कंपनी और संकर मक्का

क्र.	कंपनी	संकर का नाम
1.	गंगा कावेरी सीड्स (Ganga Kaveri Seeds Pvt. Ltd.)	GK 3059
2.	जे.के. एग्री जेनेटिक्स लि॰ (J.K. Agri Genetics Ltd.)	JK-502, JK-2492 JK-175, JK-1701
3.	कावेरी सीड्स कंपनी लि॰ (Kaveri Seeds Company Ltd.)	Kaveri - 3696, Ekka - 2288, KS - 244+
4.	माहिको (Mahyco)	MRM - 3838

[35] *http://www.apraca.org/upload/book/79/India=2013-3a.pdf*

[36] *https://nsai.co.in/news/64-odisha-approves-plan-for-hybrid-rice-maize-seed-production*

5.	मोनसेंटो इंडिया लि॰ (Monsanto India Ltd.)	Double, Prable, 900 M-Gold
6.	निर्मल सीड्स प्र॰ लि॰ (Nirmal Seeds Pvt. Ltd.)	N 51
7.	नुज़ीवीडु सीड्स प्र॰ लि॰ (Nuziveedu Seeds Pvt. Ltd.)	Ajaya, Sunny, HM-9
8.	पी.एच.आई. सीड्स प्र॰ लि॰ (PHI Seeds Pvt. Ltd.)	30 R-77
9.	संसार एग्रोपोल प्र॰ लि॰ (Sansar Agropol Pvt. Ltd.)	HQPM-1
10	यू.पी.एल. एडवांटा लि॰ (UPL-Advanta Ltd.)	PAC-740
11	श्रीराम बायो–सीड्स जेनेटिक्स (Sriram Bio-Seeds Genetics)	TX-369
12	श्रीराम फर्टीलाईज़र एंड केमिकल्स (Sriram Fertiliser & Chemicals)	Bio-9637
13	रासी सीड्स प्र॰ लि॰ (Raasi Seeds Pvt. Ltd.)	Tiptop
Source: Department of Agriculture, Government of Odisha		

पी.पी.पी. प्रोजेटों में आम जनता के हजारों करोड़ रुपये भेंट चढ़ गए। बीज और कृषि–रसायन कंपनियों के लिए संकर मक्का पैसे कमाने की मशीन बन गया था। संकर बीज की तरफ झुकाव के साथ ही खाद और कीटनाशकों की मांग भी बढ़ने लगी। इससे कृषि–व्यापार कंपनियां दोनों हाथों से मुनाफा बटोरने लगे – पहले संकर बीज बेचकर और फिर कीटनाशक–शाकनाशक रसायन बेचकर। मक्के की फसल का सिर्फ 25 प्रतिशत ही भोजन के रूप में प्रयोग होता है, बाकी का मुर्गियों और पशुओं को खिलाने के लिए या औद्योगिक प्रयोग के लिए इस्तेमाल होता है।

सतत और समग्र कृषि गठबंधन 'आशा' (ASHA – Alliance for Sustainable and Holistic Agriculture) के तथ्य–खोजी दल ने उड़ीसा में इस बात का खुलासा किया कि कम से कम तीन ऐसे कारण है जिनकी वजह से संकर मक्का स्थानीय किसानों और आदिवासियों को खाद्य सुरक्षा दे पाने में नाकामयाब है –

(i) स्थानीय लोगों को संकर मक्का खाना पसंद नहीं और संकर मक्का आने के बाद से उन्होंने धीरे–धीरे मक्का खाना बंद कर दिया है – उन्होंने कहा कि इसका स्वाद अच्छा नहीं है और इस हजम करने में दिक्कत होती है। यहां तक कि उनके पशु भी संकर मक्के का चारा पसंद नहीं करते हैं।

(ii) संकर मक्का की खेती एकल–फसल के रूप में होती है जो कई अन्य पोषक फसलों को खत्म कर देता है जिन्हें यहां की देशी किस्मों के साथ आसानी से उगाया जाता था।

(iii) कुछ जगहों पर, संकर मक्के की फसल की अवधि लंबी होने के कारण दूसरी फसल की संभावना खत्म हो जाती है। सामान्यतः यहां के किसान मक्के के बाद कोई सब्जी लगा देते थे।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि संकर मक्के का खाद्य सुरक्षा के साथ कोई भी सीधा संबंध नहीं है। उन्होंने

यह भी पाया कि संकर मक्के की खेती करने वाले कई किसानों का सबकुछ मिला जुला कर घाटा भी हुआ है।[37]

4.4 संकर मक्का उड़ीसा और पूर्वी राज्यों के लिए उपयुक्त क्यों नहीं है

(i) **प्रस्तावित उपज नहीं मिलना** : मक्के की उत्पादकता जितना बताई गई थी उतनी नहीं बढ़ी। राज्य सरकार और कंपनियों ने बताया था कि संकर मक्के की पैदावार 12 क्विंटल प्रति एकड़ होगी जबकि असल में इसकी पैदावार 3 से 5 क्विंटल प्रति एकड़ ही है। इसलिए फायदे की उम्मीद नहीं की जा सकती।

(ii) **मुफ्त सामग्री या सब्सिडी के बिना मुनाफा नकारात्मक** : साधारण हिसाब दिखाता है कि अगर राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (RKVY) के अंतर्गत सब्सिडी या मुफ्त सामग्री न दी जाए तो किसानों को घाटा ही होगा।

(iii) **किसानों की कोई अतिरिक्त आय नहीं** : विशेषज्ञों के अनुसार अगर संकर मक्के के बराबर ही बाहरी सामग्री पारंपरिक मक्के में भी लगाई जाए तो पारंपरिक मक्का भी संकर मक्का के बराबर उपज दे सकता है। इस तरह किसानों को कोई अतिरिक्त फायदा नहीं है।

(iv) **'बीज संप्रभुता' की कोई चिंता नहीं** : किसी भी योजना का पहला उद्देश्य होना चाहिए 'बीज संप्रभुता' अर्थात् बीजों के लिए किसानों की बाजार पर गैर–निर्भरता। परंतु, इस कार्यक्रम के तहत निजी कंपनियों के संकर बीजों को प्रोत्साहित करते समय किसानों की 'बीज संप्रभुता' के बारे में किसी ने नहीं सोचा। अब किसान इन संकर बीजों को अगले मौसम के लिए नहीं बचा सकते, जैसा कि वे पीढ़ी दर पीढ़ी पारंपरिक और देशी बीजों को संजोते आए हैं।

(v) **संकर मक्का, खाद्य सुरक्षा में कोई योगदान नहीं** : दुर्भाग्यवश संकर मक्का को देश में खाद्य सुरक्षा के समाधान के रूप में पेश किया जा रहा है, जो सरासर गलत है। यह एक औद्योगिक फसल है जिसकी ज्यादातर सप्लाई मुर्गी–पालन, पशु–चारा, और स्टार्च उद्योग को की जाती है। इसका सुदूर पूर्वी देशों, इंडोनेशिया, मलेशिया, कोरिया, बांग्लादेश, ईरान तथा अन्य देशों में निर्यात किया जाता है।

(vi) **संकर मक्का पारंपरिक मक्के की तरह 'स्वादिष्ट, मीठा या नरम' नहीं** : लोगों को संकर मक्का पसंद नहीं हैं क्योंकि पारंपरिक मक्के का स्वाद संकर मक्के से काफी अच्छा होता है। लगभग सारा संकर मक्का बाजार में बेच दिया जाता है और इसे मुख्य रूप से चारे के रूप में उपयोग किया जाता है।

(vii) **बाजार एकाधिकार की रचना** : बी.टी. कपास के अनुभव से यह साफ हो गया है कि निजी कंपनियों ने पारंपरिक बीजों को बर्बाद करके पूरे बीज बाजार के ऊपर अपना एकाधिकार बना

[37] *http://agrariancrisis.in/tag/maize/*

लिया। उन्होंने किसानों को अपने ऊपर निर्भर होने को मजबूर कर दिया, जिसकी वजह से किसान कर्ज में डूबते गए और हताश होकर आत्महत्या करने लगे। यही स्थिति फिर से पैदा हो जाएगी अगर संकर मक्का को प्रोत्साहित किया गया।

(viii) **बीज की महंगी कीमत** : उड़ीसा में पारंपरिक मक्के का खुदरा मूल्य 30 रुपए प्रति किलोग्राम है, जबकि सरकारी बीज की कीमत 60 रुपए प्रति किलोग्राम है। और RKVY कार्यक्रम के अंतर्गत किसान 110 रुपये प्रति किलोग्राम बीज खरीदता है। दूसरी और, संकर मक्के के बीज का खुदरा दाम खेती की व्यवहारिकता के लिए एक चिंता का विषय है। ASHA के तथ्यान्वेषी दल ने मोनसेंटो के संकर मक्के की विभिन्न किस्मों के अधिकतम खुदरा मूल्यों (MRP) की जानकारी इकट्ठा की और पाया कि पिंनेकल (Pinnacle) जैसा बीज बाजार में 1043 रुपए में 3.5 किलो का एक पैकेट मिल रहा है। इस तरह से सरकारी बीज और मोनसेंटो के बीजों के दाम में करीब 5 गुना का अंतर है।

(ix) **रसायनों के अत्यधिक प्रयोग को बढ़ावा** : संकर मक्का खाद और कीटनाशकों के प्रयोग को बढ़ावा देता है। अधिकतर समय बीज और कीटनाशकों की कंपनियां एक ही होती हैं।

(x) **संकर बीज में कम दबाव सहने की क्षमता** : संकर बीजों में स्थानीय देशी बीजों की तुलना में 'दबाव सहने की क्षमता' कम होती है। ध्यान रहे कि उड़ीसा एक आपदा संभावित क्षेत्र है जहां सूखा और चक्रवात अकसर आते रहते हैं। यहां के किसान छोटे हैं और वर्षा आधारित खेती करते हैं। जलवायु परिवर्तन के दौर में, यह स्वभाविक है कि छोटे किसानों को लचनशील कृषि चाहिए जिसमें दबाव सहने की क्षमता हो। ऐसे में दबाव झेलने में सक्षम पारंपरिक मक्के की ज्यादा जरूरत है न कि दबाव न झेल सकने वाले संकर मक्के की।

(xi) **संकर प्रजातियां एकल–फसल संस्कृति को बढ़ावा देती हैं** : उत्तर प्रदेश जैसे कई राज्यों में, पारंपरिक मक्के की खेती मिश्रित–फसल के रूप में उड़द, मूंग और सब्जियों के साथ मिलाकर की जाती है। दूसरी तरफ संकर मक्के की खेती एकल–फसल के रूप में की जाती है और यह दाल और सब्जियों जैसे पोषणकारी फसलों को हटा देता।

(xii) **किसानों की सुरक्षा का कोई उपाय नहीं** : फसल बर्बाद होने या ठीक से दाने न आने के मामले में किसानों के हितों की रक्षा करने का कोई उपाय नहीं है। बीज अंकुरित न होने की सूरत में कंपनियों का बीज बदलने के अलावा और कोई दायित्व नहीं है। इन कंपनियों को तो बिक्री विभाग की जरूरत ही नहीं हैं, इनकी बिक्री का सारा काम तो राज्य सरकार ही कर रही है। ये समझ में नहीं आता कि इसे 'साझीदारी' क्यों कहा जा रहा है, यहां तो साफ–साफ सरकारी खर्च पर निजी मुनाफा कमाया जा रहा है।

(xiii) **संकर मक्के का भाव कम है** : देसी मक्के की तुलना में संकर मक्के का बाजार में भाव काफी कम है।

ऐसा कोई कारण नहीं है कि खुले परागण किस्में (Open Pollinated Variety – OPV) को बढ़ावा नहीं दिया जा सकता। इस किस्मों से 3 टन प्रति हेक्टेयर की पैदावार पाना कोई मुश्किल काम नहीं है। जी.एम. मक्के के

प्रचार के पहले हमेशा संकर मक्के का जोरदार प्रचार किया जाता है ताकि एक बार इस जाल में फंसने के बाद किसान के पास जी.एम. मक्के को स्वीकार करने के अलावा और कोई रास्ता न बचे।

4.5. बिहार में मोनसेंटो के संकर मक्का बीज की असफलता

पूर्वी राज्य, बिहार में मक्का सभी तीन मौसमों में उगाया जाता है और राज्य में इसकी पैदावार गेहूं और धान से भी ज्यादा है। पूरे भारत के कुल मक्का उत्पादन का 7 प्रतिशत उत्पादन बिहार में होता है। राज्य भर में लगभग 7 लाख हेक्टेयर भूमि में मक्के की खेती होती है। जिसमें से 80 प्रतिशत में संकर बीजों को बोया जाता है।[38]

बिहार में, कोसी क्षेत्र के किसानों के लिए मक्के की फसल वही है जो महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र में कपास की। वर्ष 2010 में कोसी क्षेत्र में मक्के की फसल खराब (पिंनाकल, 900एम गोल्ड, 9081 जैसे संकर बीज) होने से कई किसानों को भारी नुकसान झेलना पड़ा और कईयों ने आत्महत्या कर ली।[39]

इस क्षेत्र में, जो बाढ़ से अक्सर तबाह हो जाता है, मक्के की फसल में सिर्फ दो बार पानी दिया जाता है। बिहार सरकार पी.पी.पी. मॉडल पर मक्के का प्रचार नहीं कर रही है, पर फिर भी यहां मोनसेंटो, सिंजेंटा, पायोनियर, कावेरी, सीड–टेक और पिनाकल जैसी कंपनियां बाजार में मौजूद हैं। मोनसेंटो बिहार में 15 साल से काम कर रहा है। प्रति 5 किलो बीज के दाम 750 से लेकर 1000 रुपए तक है। किसानों की यह शिकायत है कि क्यों हर साल उन्हें महंगे बीजों का पैकेट खरीदना पड़ता है। अगर एक बार वे किसी नई किस्म को उगाते हैं, तो अगले साल भी उन्हें उसके प्रयोग करने की सुविधा होनी चाहिए, लेकिन संकर किस्मों के साथ यह संभव नहीं है।[40]

फसल बर्बाद होने के मामले में किसानों को मुआवजे के लिए सरकार का मुंह देखना पड़ता है। दिसंबर 2009–2010 में बिहार को एक कड़वा अनुभव हुआ जब संकर मक्का के बीजों में ठीक तरह से दाने नहीं फूटे। राज्य में कुल 3.75 लाख हेक्टेयर मक्के की खेती में से लगभग 50,000 हेक्टेयर की फसल खराब हो गई,[41] जिससे करीब 400 करोड़ रुपए का नुकसान हुआ। गरीब किसान और ज्यादा गरीब हो गए। लेकिन मोनसेंटो जैसी निजी कंपनियों ने अपनी जिम्मेदारियों से पल्ला झाड़ लिया और सरकार को आगे आकर मदद करनी पड़ी जिसके लिए अतिरिक्त 61 करोड़ रुपये खर्च हुए।[42] इसके बाद भी सरकार और बीज कंपनियों के बीच हुए करार में ऐसा कोई दायित्व का प्रावधान नहीं रखा गया है जिससे बीज विफलता के मामले में किसानों को सुरक्षा प्रदान की जा सके।

दानों के न जमने की समस्या सरकारी संकर बीजों में नहीं है। अभी तक बिहार में किसान आत्महत्याओं की

---

[38] *http://ficci.in/spdocument/20386/India-Maize-2014_v2.pdf*

[39] *Jha, Aditya. (2010). "Maize Failures Drives Kosi Farmers around the Blend", 12 March 2010, Hindustan Times, Patna Edition.*

[40] *Directorate of Statistics and Evaluation. (2013). "Hybrid Maize in Bihar", Government of Bihar.*

[41] *http://www.thehindu.com/news/national/other-states/Farmerrsquos-suicide-not-due-to-failure-of-maize-crop-Nitish/article16576993.ece*

[42] *http://indianexpress.com/article/news-archive/web/seed-of-contention/*

घटनाएं सामने नहीं आई थी, लेकिन संकर मक्के के बीजों के खराब निकलने के बाद कई किसानों ने आत्महत्या कर ली। मजेदार बात यह है कि जाली बीज बेचने के लिए बीज कंपनियों को दंडित करना तो दूर की बात है, उलटा बीज कंपनियों ने बीजों को बेहतर बनाने के लिए और सुविधाओं की मांग कर ली और साथ में संकर मक्के की फसलों का बीमा करवाने की पेशकश कर दी। इस प्रकार किसानों की आत्महत्या को भी इन कंपनियों ने अपने मुनाफे में बदल दिया।

बिहार में यह दूसरी ऐसी त्रासदी थी। इससे पहले 2002–2003 में भी मक्के की फसल खराब हुई थी। वैशाली, पूर्वी चंपारण, पश्चिमी चंपारण, खगड़िया और कई अन्य जिलों में 20,000 एकड़ में फैली मक्के की फसल बर्बाद हो गई थी। उस साल किसानों ने 30 करोड़ रुपये के मोनसेंटो के कारगिल बीज की बुवाई की थी।[43] बिहार सरकार ने मोनसेंटो के 'कारगिल 900M' के मक्के की फसल की असफलता के जांच के आदेश दिए जिसे राज्य भर में करीब 1.4 लाख हेक्टेयर से ज्यादा इलाके में बोआ गया था। जांच के बाद, बिहार सरकार ने राज्य में किसानों को खराब और मिलावटी संकर मक्का बेचने के लिए मोनसेंटो इंडिया लिमिटेड और इसके विक्रेताओं का लाइसेंस रद्द कर दिया था।[44]

4.6 पूर्वी राज्यों के लिए सबक

संकर बीजों के साथ खराब अनुभव के बावजूद सरकारों ने इससे कोई सबक नहीं सीखा। उल्टे इसने कृषि कंपनियों को देश में और ज्यादा संकर बीज बेचने की छूट दे दी। साथ ही उन्हें जी.एम बीजों के प्रयोग की भी स्वीकृति दे दी। जब एक बार संकर बीज का प्रयोग शुरू हो जाता है तो खाद और कीटनाशकों की मांग बढ़ जाती है। मोनसेंटो जैसी बड़ी कंपनियां अपने संकर बीजों के साथ पहले से ही ग्रामीण इलाकों में गहरी पैठ बना चुकी हैं। इसने पुराने समय की आत्मनिर्भर और बहु–फसल खेती व्यवस्था को खत्म कर दिया और बदले में रासायनिक और औद्योगिक एकल–फसली खेती का प्रचार कर रही है। विडंबना ही है कि अधिकांश मामलों में संकर बीज को फैलाने के काम में केंद्र सरकार के हजारों करोड़ रुपयों का इस्तेमाल 'राष्ट्रीय कृषि विकास योजना' के तहत किया जा रहा है।

असल में संकर बीजों के माध्यम से जी.एम. बीजों के लिए जमीन तैयार की जा रही है। मक्के के मामले में कई शाकनाशक–सहनशील (Herbicide Tolerant) जी.एम. फसलों (HT-GM) के ऊपर प्रयोग शुरू भी हो चुके हैं। ऐसी चार बहुराष्ट्रीय कृषि कंपनियां हैं जो भारत में जी.एम. मक्के को विकसित कर रही हैं। मोनसेंटो इंडिया लिमिटेड अपने कीटरोधी और शाकनाशी सहनशील मक्के के साथ बाकी सबसे आगे है। पायनियर ओवरसीज़ कॉरपोरेशन, डोव एग्रो–साइंसेज़ और सिंजेंटा बायो–साइंसेज़ नाम की तीन अन्य कंपनियां भी इस दौड़ में शामिल हैं। भारत में एच.टी.–जी.एम. फसलों को व्यवसायिक बनाने के लिए बहुत जोर डाला जा रहा है।

शाकनाशक–सहनशील (Herbicide Tolerant) जी.एम. फसलों (HT-GM) में किसान खड़ी फसल में शाकनाशक रसायनों का छिड़काव कर अनचाहे घास–पात को नष्ट कर सकेंगे। ध्यान देने वाली बात यह है

---

[43] *http://www.indiaenvironmentportal.org.in/content/41884/seeds-of-justice-in-bihar/*

[44] *http://www.rediff.com/money/2003/apr/03maize.htm*

कि ये तकनीक 'शाकनाशक सहनशील' है, न कि 'शाकनाशक प्रतिरोधी'। इसका यह मतलब है कि एच.टी.–जी.एम. पौधा ऐसी क्षमता विकसित करने में सक्षम है जो नष्ट हुए बिना शाकनाशक रसायनों के साथ खड़ा हो सके या आत्मसात कर सके। उदाहरण के लिए 'राउण्डअप रेडी' जी.एम. बीजों (मोनसेंटो की शाकनाशक सहनशील किस्म का नाम, जो मोनसेंटो के ग्लाईफोसेट नामक शाकनाशक को सहन कर लेता है) को एग्रोबैक्टेरियम स्ट्रैन सी.पी. (CP4 EPSPS) की एक जीन से बनाया गया है जिसपर ग्लाईफोसेट कर असर नहीं होता।

जैव प्रौद्योगिकी उद्योग का यह दावा करता है कि शाकनाशी सहनशील जी.एम. (HT-GM) फसलों से कृषि में हो रहे रसायनों का इस्तेमाल कम हो जाएगा, खासतौर से पुरानी ज्यादा जहरीली शाकनाशकों का इस्तेमाल तो बिलकुल बंद हो जाएगा। बल्कि सच्चाई यह है कि इससे शाकनाशकों का इस्तेमाल और बढ़ जाएगा। इससे खेतों में हमारी जैव विविधता खत्म हो जाएगी, शाकनाशक जहर के अवशेष हमारे भोजन, पशुओं के चारे और जल स्त्रोतों में घुल जाएंगे, खर–पतवारों की शाकनाशक प्रतिरोधी क्षमता विकसित हो जाएगी और इस प्रकार की कई अन्य समस्याएं पैदा हो जाएंगी।

'आनुवंशिक अभियांत्रिकी मूल्यांकन समिति' (Genetic Engineering Appraisal Committee - GEAC) ने 2010–2011 में पहले की दो ट्रांसजेनिक बीजों – 900M गोल्ड और हाईशेल (HiShell) का स्वीकृति दे दी।[45]

लेखक द्वारा किए गए सर्वेक्षण से पता चलता है कि जो किसान संकर मक्का लगाते हैं वे साथ में स्थानीय मक्का भी लगाते हैं जिनमें दबाव की स्थितियां, जैसे – बाढ़, जलभराव इत्यादि को झेलने की क्षमता होती है। हमें यह भी देखने को मिला कि संकर मक्का का भोजन के रूप में नहीं के बराबर इस्तेमाल होता है इसलिए किसानों में रबी के मौसम में स्थानीय किस्मों की खेती का प्रचलन है।

[45] *http://indiagminfo.org/wp-content/uploads/2011/09/herbicide-tolerant-crops-briefing-paper.pdf*

5. पूर्वी राज्यों में खेती का मशीनीकरण

पारंपरिक रूप से, भारतीय किसान गांव के लोहार और बढाई द्वारा गढ़े गए औजारों, जैसे – खुरपी, कुदाल, हंसिया, हल, फावड़ा, पारसी पहिया, इत्यादि की मदद से खेती करते थे। पर अब मशीनों ने इनकी जगह ले ली है। जहां पहले इंसानों और जानवरों के श्रम से खेती होती थी वहां अब मशीनों का प्रयोग होने लगा है। इस तरह जैविक ऊर्जा (इंसानों और जानवरों की मेहनत) के बदले अब यंत्रीकृत ऊर्जा (ट्रेक्टर, थ्रेशर, हार्वेस्टर, पंप सेट आदि) का इस्तेमाल होने लगा है।

खेती में मशीनीकरण को एक ऐसे तकनीकी पैकेज के रूप में पेश किया गया है जिससे सारे कृषि कार्य समय पर निपटान, उत्पादकता में वृद्धि, फसल नुकसान में कमीं, दानों या उत्पाद की अच्छी गुणवत्ता प्राप्त की जा सकती है।

मशीनीकरण के अंतर्गत ट्रैक्टर, पावर टिलर, जीरो टिल सीड, उर्वरक ड्रिल, उठी हुई क्यारी में पौध लगाने की मशीन, गन्ना काटने और लगाने की मशीन, आलू बोने की मशीन, आलू खोदने की मशीन, ट्रैक्टर से चलित कटाई की मशीन, बीज साफ करने और छंटाई करने की मशीन, मोबाइल पैरों से फसल काटने की मशीन, निराई की मशीन, पावर थ्रेसर, फटकने की मशीन, कोनो–वीडर सिंचाई पाइप, छिड़काव की मशीन, पंप सेट (डीजल/बिजली), रोटावेटर, कंबाइन हार्वेस्टर, व्हील–हो, बहू पंक्ति बीज ड्रिल, धूल झाड़ने की मशीन, और अन्य ऊर्जा चलित कृषि औजार और मशीनें शामिल हैं।[46]

कुशल औजारों के साथ अगर मशीनीकरण का समझदारी से और विवेकसम्मत उपयोग किया जाए तो उत्पादकता में इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। हालांकि इनसे मजदूरों के रोजगार खत्म हो जाते हैं।

मशीनीकरण के मामले में किसी राज्य के पिछड़ेपन का पता इस बात से चलता है कि वहां कितने किलोवाट प्रति हेक्टेयर की खपत हो रही है। जैसे बिहार में यह 1.0 किलोवाट प्रति हेक्टेयर है जो पूरे भारत में सबसे कम है; भारत का राष्ट्रीय औसत 1.5 किलोवाट प्रति हेक्टेयर है। भारत में सबसे ज्यादा मशीनीकरण पंजाब (3.75 किलोवाट प्रति हेक्टेयर) में है।[47]

कृषि मशीनीकरण योजना 2009–10 के अनुसार, बिहार के हर जिले में मशीनीकरण को प्रोत्साहित करना है जिससे 'दूसरी हरित क्रांति' को आगे बढ़ाया जा सके।

5.1 कृषि मशीनीकरण पर राष्ट्रीय मिशन

11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान वर्ष 2009–2010 तक कृषि मशीनीकरण के लिए निम्नलिखित छह योजनाओं को लागू किया गया :

---

[46] *Tewari, V.K. et.al. (2012). "Farm Mechanisation Status of West Bengal in India", Vol. 1, Issue 6, December 2012, Basic Research Journal of Agricultural Science and Review.*

[47] *Verma, Mrinal and Tripathi, Ashok. (2015). "Perspective of Agricultural Mechanisation in Supaul District of North Bihar - A Research", Vol. 8, Issue 8, August 2015, Journal of Agriculture and Veterinary Science.*

1. 'कृषि का मैक्रो–मोड प्रबंधन' (Macro-mode Management of Agriculture - MMA)
2. 'तिलहन, दलहन, ताड़ का तेल और मक्के की एकीकृत योजना' (Integrated Scheme of Oilseeds, Pulses, Oil Palm and Maize - ISOPOM)
3. 'जूट प्रोद्योगिकी लघु मिशन–II' (Jute Technology Mini Mission - II)
4. 'राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन' (National Food Security Mission - NFSM)
5. 'राष्ट्रीय कृषि विकास योजना' (Rashrtiya Krishi Vikas Yojana - RKVY)
6. 'पावर टिलर प्रसार स्कीम की राज्य योजना' (State Plan on Power Tiller Promotion Scheme)

ऊपर दी गई योजनाओं के अंतर्गत किसानों को कृषि मशीनें, औजार और संयंत्र खरीदने के लिए सब्सिडी दी जाती है। ट्रैक्टर वो बुनियादी मशीन है जिससे ज्यादातर दूसरी मशीनें जुड़ी हुई है। पावर टिलर को 60 के दशक में लाया गया, पर उसकी लोकप्रियता उतनी नहीं बढ़ी जितनी ट्रेक्टर की थी।

भारतीय कृषि में विभिन्न ऊर्जा स्रोतों का योगदान तालिका 9 में दिया गया है।

तालिका 9 : कृषि में विभिन्न ऊर्जा स्त्रोतों के योगदान का प्रतिशत (2005–06)

ऊर्जा स्त्रोत	प्रतिशत योगदान	टिप्पणी
कृषि मजदूर	6	औसत कृषि ऊर्जा = 1.5 किलोवाट / हेक्टेयर
पशु	8	
ट्रैक्टर	47	
पावर टिलर	01	
डीज़ल इंजन	18	
बिजली मोटर	20	

Source: http://un-csam.org/Activities%20Files/A0711/02in.pdf

'कृषि मशीनीकरण पर राष्ट्रीय मिशन' (National Mission on Agriculture Mechanization - NMAM) में पूर्वी राज्यों के छोटे और सीमांत किसानों को खेती की मशीनों को खरीदने के लिए सब्सिडी का प्रावधान रखा गया है। हमें डर है कि जिस प्रकार इन खर्चीले मशीनों का अंधाधुंध प्रसार किया जा रहा है, कहीं हमारे छोटे और सीमांत किसान फिर से कर्ज और आत्महत्या के जहरीले चक्र में न फंस जाएं। पंजाब, विदर्भ, मराठवाडा, और बुंदेलखंड के किसान पहले से ही इस समस्या से झूझ रहे हैं।

(क) कृषि मशीनीकरण के लिए उड़ीसा सरकार की सब्सिडी

वर्ष 2013 में उड़ीसा सरकार ने 'राज्य कृषि नीति' अपनाई जिसमें किसानों को मशीनें खरीदने के लिए भारी सब्सिडी देने का प्रावधान है। मशीनीकरण को लोकप्रिय बनाने के लिए भी पैसे आबंटित

किए गए। केवल राज्य सरकार द्वारा ही कृषि मशीनीकरण के लिए 240 करोड़ रुपये खर्च करने का प्रावधान है, जो पूरे भारत में सबसे ज्यादा है। इसमें अगर केंद्र का हिस्सा भी जोड़ दिया जाए तो यह आंकड़ा करीब 300 करोड़ रुपये हो जाएगा।[48]

मशीनीकरण को बढ़ावा देने के लिए उड़ीसा सरकार ने 'किसान क्लब' की शुरुआत की है। वर्ष 2014–2015 तक करीब 11,648 किसान क्लब बन चुके थे। इन्हें राष्ट्रीय कृषि व ग्रामीण विकास बैंक (NABARD) और अन्य सरकारी बैंकों से सहायता प्राप्त है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत, NABARD इन क्लबों को शुरुआती 3 साल के लिए आर्थिक सहायता देता है। बाद में बैंक इन्हें और दो साल के लिए मदद दे सकते हैं। अकेले बालासोर जिले में 1000 से ऊपर किसान क्लब हैं।

(ख) कृषि मशीनीकरण के राजमार्ग पर असम

इसी प्रकार असम भी मशीनीकरण के राजमार्ग पर चल रहा है। वर्ष 2012 तक सरकार किसानों को 5772 ट्रैक्टर और 20,777 पावर टिलर बांट चुकी थी।

तालिका 10 : असम में कृषि मशीनों की मौजूदा स्थिति[49]

मशीन	कुल संख्या
ट्रैक्टर	5772
पावर टिलर	20777
धान थ्रेशर	43
रोटावेटर	111
स्वयं चलित कटाई मशीन	20
छोटी मशीनें या औजार	99884

अगले कुछ वर्षों में असम को 37,616 ट्रैक्टरों और 43,886 पावर टिलरों की जरूरत होगी, जिसके बाद वहां राष्ट्रीय औसत से ज्यादा ट्रैक्टर और पावर टिलर हो जाएंगे। इसके अलावा असम को 29257 मोल्ड बोर्ड हल (mould board plough), 42839 कल्टीवेटर (cultivator), 52245 धान रोपाई मशीन (paddy transplanter) और 4,180 कंबाइन हार्वेस्टर (combine harvester) और कई अन्य खेती के औजारों और मशीनों की भी जरूरत पड़ेगी।[50]

---

[48] *Thakur, Purusttam and Sahoo, Samarjit et.al. (2015). "Finding Answers to the 34 Million Questions", Vol. 24, No. 15, 1-15 December 2015, Down To Earth, New Delhi.*

[49] *Mandal, S. (2014). "Road Map for Farm Mechanization in Assam State", Vol. 27, Issue 1, June 2014, Indian Journal of Hill Farming.*

[50] *http://www.kiran.nic.in/pdf/IJHF/Vol27_1/6_Road_Map_Farm_Mechanization.pdf*

(ग) कृषि मशीनीकरण पश्चिम बंगाल के किसानों के लिए महंगा सौदा

एक शोध में पाया गया कि पश्चिम बंगाल में लगभग 26 प्रतिशत किसानों का मानना है कि ट्रैक्टर से जुताई में खर्च ज्यादा आता है; वहीं अन्य 14 प्रतिशत किसानों को लगता है कि ट्रैक्टर को किराए पर लेकर जुताई और भी महंगा पड़ता है। करीब 26 प्रतिशत किसानों ने जवाब दिया कि जब ट्रैक्टर की सबसे ज्यादा जरूरत होती है तब वह किराए पर नहीं मिलता है। यही हाल दूसरी महंगी मशीनों का भी है जैसे बिजली/डीजल ट्यूबवेल या पम्प, ट्रैक्टर–ट्रॉली, बीज ड्रिल आदि। थ्रेशर मशीनों के मामले में यह धारणा थी कि ये न सिर्फ खरीदने में महंगा पड़ता है पर इसके रख–रखाव का खर्च भी बहुत ज्यादा है।[51]

इसी शोध का यह भी निष्कर्ष है कि जिस रफ्तार से मशीनों के दाम बढ़ रहे हैं उस रफ्तार से उत्पादन के मूल्य में बढ़ोत्तरी नहीं हो रही है। वर्ष 1996–97 से 2009–10 के दौरान धान, सरसौं, और गेंहू के उत्पादन में वृद्धी 11.48 प्रतिशत की दर से हुई पर उनकी मशीनों की कीमत 38.73 प्रतिशत की दर से बढ़ीं।

5.2. कृषि मशीनीकरण : पूर्वी राज्यों के लिए उपयुक्त नहीं

सामान्य तौर पर यह माना जाता है कि मशीनीकरण खेतों के लिए अच्छा और लाभदायक होता है, लेकिन इसकी भी अपनी कमियां हैं। पूर्वी भारत जैसे पिछड़े इलाकों में इससे नुकसान ज्यादा ही हैं, क्योंकि इसकी शुरूआती लागत बहुत ज्यादा है। इसके अलावा मशीनों के रख–रखाव और कलपुर्जों की उपलब्धता जैसी अनेक समस्याएं भी हैं।

दिल्ली विश्वविद्यालय के 'आर्थिक विकास संस्थान' के सी.एस.सी. शेखर और योगेश भट्ट द्वारा बिहार और पश्चिम बंगाल पर किए गए एक अध्ययन[52] में किसानों से मशीनीकरण से जुड़ी समस्याओं के बारे में सवाल पूछे गए, जिससे खेती में आने वाली बाधाओं का पता लगाया जा सके। इस अध्ययन से पता चलता है कि केवल 10 प्रतिशत किसानों को जानवरों की मदद से जुताई महंगी लगती है; वहीं 14 प्रतिशत किसानों का कहना है कि ये किराए पर नहीं मिलते हैं। और करीब 76 प्रतिशत किसानों ने इस सवाल का कोई जवाब नहीं दिया क्योंकि उन्हें जानवरों से जुताई करने में कोई समस्या नहीं है। जुताई के मामले में जहां 26 प्रतिशत किसानों के लिए ट्रैक्टर चलित हल खरीदना काफी महंगा है; वहीं 14 प्रतिशत किसानों के लिए किराए पर ट्रेक्टर लेकर जुताई भी महंगी लगती है। लगभग 26 प्रतिशत किसानों का यह भी कहना था कि जब सबसे ज्यादा जरूरत होती है तब ट्रेक्टर किराए पर नहीं मिलता। कुल मिला कर यह तो बिलकुल साफ था कि ट्रैक्टर के मुकाबले जानवरों की मदद से जुताई में किसानों को काफी कम परेशानियों का सामना करना पड़ रहा था। सबसे बड़ा अंतर दोनों के बीच खर्च का अंतर था बावजूद इसके कि ट्रैक्टर से काम करने में काम जल्दी और अच्छे से हो जाता है।

---

[51] *Sarkar, Debashis et.al. (2013). "Effect of Farm Mechanisation on Agricultural Growth and Comparative Economics of Labour and Machinery in West Bengal", Study No. 175, Directorate of Economics and Statistics, Ministry of Agriculture, Govt. of India, Krishi Bhawan.*

[52] *http://www.iegindia.org/ardl/2014-5-s.pdf*

पूर्वी राज्यों में कृषि मशीनीकरण की संरचनात्मक स्थिति थोड़ी पेचीदा है। खेतों का आकार, फसल का पैटर्न, उचित आकार की मशीनों का बाजार मूल्य, बैंकों से आर्थिक सहायता की उपलब्धता इत्यादि ऐसे कई कारण हैं जिनसे कृषि मशीनीकरण निर्धारित होता है।[53]

(i) भारत में 85 प्रतिशत छोटे और सीमांत किसान हैं जिनके पास 2 हेक्टेयर से कम जमीन है। पूर्वी राज्यों में भी यही हाल है। ट्रैक्टर, जो खेती की सबसे प्रमुख मशीन है, केवल उन किसानों के लिए लाभप्रद है जिनके पास कम से कम 10 हेक्टेयर की जमीन है।[54]

(ii) ट्रैक्टर, पावर टिलर जैसी मशीनों के लिए सही माप के औजार या उपकरण उपलब्ध न होना या किसानों को उसकी सही जानकारी नहीं होने से ईंधन की खपत या उत्पादन खर्च बढ़ जाता है।

भारत में लगभग 90 प्रतिशत ट्रेक्टर किसी आर्थिक संस्थान की मदद से बेचे जाते हैं। इसके लिए आवेदक की आर्थिक स्थिति यह तय करती है कि उसको लोन मिलेगा या नहीं। अक्सर ऐसा होता है कि किसान किस्त नहीं दे पाते और बैंक इनके ट्रैक्टरों की नीलामी कर देते हैं, जिससे उन्हें शर्म और अपमान का सामना करना पड़ता है।

(iii) कृषि में काम आने वाली मशीनों को खरादने के लिए काफी पूंजी की जरूरत होती है। पूर्वी राज्यों के अधिकतर किसानों के लिए इतनी पूंजी लगाकर इन मशीनों को खरीद पाना संभव नहीं।

(iv) ज्यादातर खेती के औजारों और मशीनों को लघु उद्योगों में बनाया जाता है। इनकी गुणवत्ता सामान्यतः उतनी अच्छी नहीं होती जिससे काम उतने अच्छे से नहीं हो पाता या उनसे फायदा कम और खर्च ज्यादा होता है।

(v) पूर्वी राज्यों में खेती के मशीनों के बिक्री के बाद की सेवाएं चिंताजनक है। इन मशीनों के उचित रखरखाव और मरम्मत के लिए सर्विस सेंटर बहुत कम हैं।

(vi) किसानों के पास खेती के मशीनों को खरीदने, उनके संचालन और रखरखाव से जुड़ी जानकारी पर्याप्त नहीं होती है जिससे वे कई बार गलत निर्णय ले लेते हैं जो उनके लिए नुकसानदायक और जोखिम भरा होता है।

(vii) पूरे देश में कुल मिला कर डीजल की कमी है। इसलिए बड़े पैमाने पर तेलों से चलने वाली खेती की मशीनों का इस्तेमाल में कोई समझदारी नहीं है।

(viii) दूरस्थ ग्रामीण इलाकों में मरम्मत तथा अन्य सुविधाओं की कमी एक बहुत बड़ी समस्या है।

(ix) खेती की मशीनें कभी–कभी ही काम में आती हैं; अधिकतर समय ये खाली पड़ी रहती हैं।

---

[53] *Verma, Mrinal and Tripathi, Ashok. (2015). "Perspective of Agricultural Mechanisation in Supaul District of North Bihar - A Research", Vol. 8, Issue 8, August 2015, Journal of Agriculture and Veterinary Science.*

[54] *Mehta, C.R. (2013). "Agricultural Mechanization Strategies in India, Central Institute of Agricultural Engineering", Bhopal, ICAR, Regional Forum 2013 (http://www.ciae.nic.in).*

पूर्वी राज्यों में मशीनीकरण के कारण बड़ी मात्रा में पशुओं की आबादी बेकार हो जाएगी। यहां आबादी भी बहुत ज्यादा है ऐसे में भारी संख्या में मजदूर की जगह मशीनें ले लेंगी।

पूर्वी भागों में किसानों को आमतौर पर मशीनीकरण से जुड़ी किसी योजना या सब्सिडी कार्यक्रम के बारे में पता नहीं है। कुछ गिने–चुने बड़े किसान ही ऐसी योजनाओं का लाभ उठा पाते हैं। एक बड़ा ग्रामीण वर्ग हमेशा वंचित रह जाता है।

आज उस पुरानी परंपरा को फिर से पुनर्जीवित करने की जरूरत है जिससे ठेके पर मजदूरों के ऊपर निर्भरता खत्म हो सके। उदाहरण के लिए उड़ीसा के संभलपुर, बारगढ़, देबागढ़ और सुंदरगढ़ जिलों के किसान अपनी पारंपरिक 'पंच' व्यवस्था का पालन करते हैं, जिसमें सारे किसान परिवारों के पुरुष एक साथ मिलकर खेतों में काम करते हैं। अगर कोई किसान नहीं आ पाता है तो उसे अपनी जगह एक दूसरे मजदूर को भेजना पड़ता है। जनजातिय पट्टियों में प्रचलित यह पारंपरिक तरीका बढती मजदूरी की समस्या का हल हो सकता है। पर दुःख इस बात का है कि आजकल हमारे बीच सामुदायिक भरोसा लगातार घटता जा रहा है।

दक्षिण उड़ीसा की जनजातियों में 'कुटुम्ब बाड़ा' नामक एक पारंपरिक खेती की प्रथा है, जिसमें गांव के सभी लोग एक साथ मिलकर धान के खेतों में काम करते हैं। 'कुटुम्ब बाड़ा' की विशेषता यह है कि खेत के मालिक को सामुदायिक विकास के लिए प्रति व्यक्ति 20 रुपये के हिसाब से एक मामूली योगदान देना होता है।

6. दूसरी हरित क्रांति की पुनः कल्पना–विकल्प और किसान अनुकूल रणनीति

6.1 फसल भूमि में विस्तार और फसल विविधीकरण

दूसरी हरित क्रांति को बढ़ावा देने के लिए सबसे पहली रणनीति थी – कुल बोआ क्षेत्र और दोहरी–फसल क्षेत्र का विस्तार, जिसका मतलब था कि एक ही खेत में दो बार फसल लेना। सिंचाई सुविधाओं को बढ़ाकर, वर्षा के पानी का संरक्षण, वर्षा जल संग्रहण (Rain Water Harvesting) ढ़ांचे द्वारा, सिंचन सिंचाई प्रणाली (Sprinkler Irrigation), या खरीफ के मौसम में उपयुक्त सबजी, मूल या कंद की फसलें लगाकर बड़ी आसानी से दोहरी–फसल क्षेत्रों का विस्तार किया जा सकता है।

पूर्वी राज्यों में यह देखा गया है कि वहां की फसलों का पैटर्न पिछले डेढ़ दशकों में ज्यादा नहीं बदला है। इसका अंदाजा इस बात से लगा सकते हैं कि पुर्वी क्षेत्र में कुल 4.14 करोड़ हेक्टेयर की खेती की जमीन है। उसमें से करीब 78.83 प्रतिशत जमीन में खाद्यान्न की खेती होती है जबकि सकल भारत (19.28 करोड़ हेक्टेयर जमीन) का औसत मात्र 63.07 प्रतिशत है।[55]

6.2 कृषि विज्ञान केंद्रों की भूमिका बढ़ाना

भारत सरकार के कृषि मंत्रालय की सहायता से प्रत्येक जिले में 'कृषि विज्ञान केन्द्र' का गठन किया गया है। ये केंद्र सरकारी शोध संस्थानों की नई तकनीकों और तरीकों को किसानों तक पहुंचाने का काम करते है। देश भर में आज 642 कृषि विज्ञान केंद्र विभिन्न राजकीय कृषि विश्वविद्यालयों के तहत कार्य कर रहे हैं। इन्हें 'भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद' (ICAR) से अनुदान प्राप्त है।[56]

पूर्वी राज्यों में, विशेषकर बिहार और उड़ीसा में, मोनसेंटो, ड्यूपौंट, सिंजेंटा, बायर क्रॉप साइंस जैसी बहुराष्ट्रीय बीज कंपनियों भी बड़ी तेजी से अपना व्यापार कर रही हैं। जाहिर सी बात है कि सरकारी संस्थाएं निजी कंपनियों को फैलने का भरपूर मौका दे रही हैं तभी इनका व्यापार इतना फल–फूल रहा है।

कृषक–मित्रों की भी महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। कृषक–मित्र कृषि विभाग और किसानों के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभा सकते हैं। वो किसानों को सरकारी बीजों की उपलब्धता और किस्मों के बारे में यो खेती की नई तकनीकों और फसल बीमा के बारे में जानकारी दे सकते हैं।

6.3 धान सघनीकरण विधि (श्री विधि) को लोकप्रिय बनाना

धान की पैदावार में क्रांति या तो बेहतर बीजों के इस्तेमाल से या बेहतर खेती के तरीके से आ सकती है। 'धान सघनीकरण विधि' (System of Rice Intensification – SRI) या 'श्री' विधि ने यह साबित कर दिया है

---

[55] *Karmakar, K.G. and Sahoo, B.B. (2015). "Green Revolution in Eastern India", in the edited book by M. Ghosh, D. Sarkar and B.C. Roy, "Diversification of Agriculture in Eastern India", Springer, 2015.*

[56] *http://indianexpress.com/article/india/india-news-india/at-this-kvk-50-acres-and-2-scientists-who-double-up-as-accountants-administrators/*

कि इसमें न सिर्फ पानी बचाने की क्षमता है बल्कि इससे किफायती तरीके से पैदावार भी बढ़ाई जा सकती है। देश में करीब 60 प्रतिशत धान के खेत सिंचित भूमि में हैं जहां से करीब 75 प्रतिशत उत्पादन होता है पर इसके लिए बेहिसाब पानी की जरूरत पड़ती है।

छोटे और सीमांत किसानों के लिए 'श्री' विधि बेहद उपयोगी है। श्री का मकसद है – 'कम में से अधिक प्राप्त करना'। त्रिपुरा में एक बोर्ड पर श्री के बारे में बड़ा सटीक नारा लिखा था, जिसका मतलब है – ''बीज कम, खाद कम, पानी कम, दवाई कम, खर्च कम – पर उत्पादन ज्यादा और आमदनी ज्यादा।''[57]

लगभग 30 साल पहले लैटिन अमेरिका में स्थित मेडागास्कर के पादरी हेनरी द लौलनी ने श्री विधि को विकसित किया। पूरे विश्व में लगभग 50 लाख से अधिक किसान श्री विधि को अपना चुके हैं। जिन 50 देशों में श्री विधि को अपनाया गया है, वहां 30–40 प्रतिशत पानी की बचत देखी गई है।[58]

श्री में यह क्षमता है कि वह धान की उत्पादकता को 8 टन प्रति हेक्टेयर तक बढ़ा सकता है (जबकि राष्ट्रीय औसत केवल 2.1 टन प्रति हेक्टेयर है) और वह भी बिना किसी नए बीज के, काफी कम खाद और कृषि–रसायनों का इस्तेमाल करके और केवल आधी मात्रा में पानी का इस्तेमाल करके। अगर सर्वोत्तम तरीकों का प्रयोग किया जाए तो इस विधि से धान का उत्पादन 15–20 टन प्रति हेक्टेयर तक भी प्राप्त किया जा सकता है।[59]

त्रिपुरा में वर्ष 2002 में केवल 44 किसानों के साथ श्री विधि की शुरूआत की गई थी। अब इनकी संख्या बढ़कर 3.50 लाख हो गई है जो करीब 1 लाख हेक्टेयर में खेती कर रहे हैं।[60] त्रिपुरा में श्री विधि इतनी लोकप्रिय हो गई है कि देखते ही देखते आधा से ज्यादा धान क्षेत्र इसमें तबदील हो गया। इसी प्रकार वर्ष 2007 में बिहार के कुछ सौ किसानों ने श्री विधि की शुरुवात की। चार साल के अंदर बिहार का 10 प्रतिशत धान क्षेत्र श्री विधि का इस्तेमाल करने लगा था।[61]

श्री विधि को नई 'हरित जमीनी क्रांति' के रूप में माना गया है, जो खरीदी हुई बाहरी सामग्रियों पर नहीं बल्कि वैज्ञानिक तौर पर सिद्ध तरीकों पर आधरित है।

यह अच्छी कृषि पद्धतियों का एक ऐसा संयोजन है जो विभिन्न जगहों पर वहां की कृषि परिस्थितिकी और फसल प्रणाली के अनुसार भिन्न तो हो सकता है, लेकिन इसकी मूल भावना हमेशा कम लागत में उच्च पैदावार से किसानों को लाभ पहुंचाने की रहेगी।

श्री विधि के अंतर्गत, पारंपरिक 25 से 30 दिन पुराने पौधे के बजाय 8 से 12 दिन पुरानी पौध की रोपाई की जाती है। एक जगह पर अधिकतम दो–तीन पौध लगाई जाती है और उनके बीच एक 25 x 25 सेंटीमीटर का फासला रखा जाता है। मिट्टी में नमी रखी जाती है पर इसे डुबो कर नहीं रखा जाता। नियमित निराई करके

---

[57] *Sharma, Rita. (2014). "More Rice from Less Water", 7 July, 2014, The Hindu, New Delhi.*

[58] *Gopalakrishnan, R. (2014). "For A Second Rice Revolution", 5 September 2014, Business Standard, New Delhi.*

[59] *http://www.thehindu.com/opinion/op-ed/more-rice-from-less-water/article6183223.ece*

[60] *ibid*

[61] *Vidal, John. (2013). "India's Rice Revolution", 16 February 2013, Guardian, U.K.*

मिट्टी में वायु संचारण बरकरार रखा जाता है। रसायन खाद के बदले कंपोस्ट खाद या जैविक पोषण के अन्य स्त्रोतों को प्राथमिकता दी जाती है।

धान सघनीकरण 'श्री' विधि के फायदे

श्री विधि का प्रमुख फायदे हैं – पानी और बीज की बचत और अधिक उपज

- ज्यादा उत्पादकता : 20 से 50 प्रतिशत
- पानी की बचत : 30 से 50 प्रतिशत कम सिंचाई
- किफायती उत्पादन : 10 से 20 प्रतिशत कम खर्च
- ज्यादा आमदनी : 50 से 100 प्रतिशत ज्यादा
- जैविक प्रतिरोधक क्षमता : कीट और बीमारियों से अधिक प्रतिरोधता
- जलवायु लचनशीलता – ग्रीन हाउस गैसों का कम उत्सर्जन
- भारत में श्री के तहत कुल कृषि क्षेत्र : 17 लाख हेक्टेयर

21वीं शताब्दी में, जहां पानी कृषि का महत्वपूर्ण खर्च और बाध्यता बन गया है, और जहां मृदा क्षरण और भूमि संसाधन घटते जा रहे हैं, और जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभाव दिख रहे हैं, ऐसे में श्री विधि लाखों वंचित कृषि परिवारों के लिए एक नई आशा की किरण है। श्री विधि में किसी भी प्रकार का कोई पेटेंट, रॉयल्टी या लाइसेंस शुल्क नहीं है। यह BGREI के तहत प्रोत्साहित की जा रही उन गिनी चुनी तकनीकों में से एक है जिसमें केवल किसानों का ही फायदा है।

6.4 जैविक खेती को बढ़ावा

भारतीय कृषि बाजार में जैविक उत्पादों का अपना एक अलग स्थान है। कुल कृषि उत्पादन का ये केवल 1 प्रतिशत है। लेकिन पिछले कुछ सालों में घरेलू बाजार में इसकी मांग बढ़ रही है। इसकी वृद्धि दर 100 प्रतिशत से भी ज्यादा है।[62]

जैविक खेती में रसायनिक खाद, कीटनाशकों और शाकनाशकों का बिलकुल प्रयोग नहीं होता है। पूर्वी राज्यों में जैविक खेती की संभावनाएं बहुत अच्छी हैं, क्योंकि यहां की पारंपरिक खेती में पहले से ही रसायनों को ज्यादा प्रयोग नहीं होता है। लोगों के पास जानकारी मौजूद है, इसलिए इन्हें आसानी से जौविक पद्धति की ओर मोड़ा जा सकता है। दूसरी अच्छी बात ये है कि पूर्वी राज्यों में खेतों का आकार अपेक्षकृत छोटे हैं। छोटे आकार वाले खेतों से जैविक पद्धति द्वारा ज्यादा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

सिक्किम के पूर्ण रूप से जैविक राज्य बन जाने के बाद से भारत में जैविक खेती के प्रसार के लिए ''समूह (गुच्छा)'' दृष्टिकोण अपनाया जा रहा है। केंद्र सरकार की योजना 10 हजार समूह (20 हेक्टेयर का 1 समूह)

[62] *Duval, Marion and Claudia, Wiehfer. "Organic Food Labelling Practice in the EU - An Option for the Domestic Market in India", Indo-German Programme On Consumer Policy, and Consumer Protection (CPP), GIZ, New Delhi.*

को देश भर में विकसित करने का है, जिससे घरेलू बाजार की मांग पूरी करने के साथ–साथ जैविक उत्पादों का निर्यात भी किया जा सके।[63] इस योजना के तहत, 50 या उससे ज्यादा किसान एक समूह बना सकते हैं। हर किसान को 3 साल में बीज, कटाई और परिवहन के लिए 20 हजार प्रति एकड़ दिये जाने का प्रावधान है, जिसे कृषि मंत्रालय के अधीन 'परंपरागत कृषि विकास योजना' के तहत दिया जाएगा।

जैविक खाद्य अगर उत्पादक (या उत्पादक संस्था) द्वारा सीधे उपभोक्ता को बेचा जा रहा है तो उसे अनुपालन के सत्यापन (verification of compliance) की जरूरत नहीं है। यही छूट प्रसंस्कृत जैविक खाद्य पदार्थों के ऊपर भी लागू है। परंतु जमीनी सच्चाई यह है कि देश भर में जैविक किसानों को अपने उत्पादों के प्रमाणीकरण (certification) को लेकर काफी मुसीबत झेलना पड़ता है। सिक्किम की तरह पूर्वी राज्यों को भी प्रमाणीकरण (certification) की प्रक्रिया को आसान बनाना चाहिए।

वर्षा आधारित क्षेत्र, आदिवासी और पहाड़ी क्षेत्रों में जैविक खेती के विकास की ज्यादा अच्छी संभावनाएं हैं। विशेषज्ञों को यह पड़ताल करनी चाहिए कि कैसे इस पद्धति से छोटे और सीमांत किसानों को फायदा पहुंचाया जाए और बंजर भूमि को कैसे जैविक खेती के लिए तैयार की जाए।

6.5 देशी / पारंपरिक धान बीज

पूर्वी राज्यों के किसान प्रति हेक्टेयर 8–9 टन धान का उत्पादन करते हैं, जो 'अंतर्राष्ट्रीय धान शोध संस्थान' (IRRI) के संकर बीजों से भी बेहतर है। इसी तरह का उत्पादन डॉ॰ रिछारिया ने बहुत निम्न समग्रियों (इंपुट) के साथ प्राप्त कर लिया था। डॉ॰ रिछारिया भारत के प्रमुख चावल विशेषज्ञों में से एक थे। उन्होंने अपने जीवनकाल में धान की 19,000 किस्मों को खोज निकाला था। उनका अनुमान था कि भारत में धान की कम से कम 2 लाख किस्में मौजूद हैं।[64]

इनमें से अधिकतर किस्मों में जैविक दबावों (biotic stress) को लेकर प्रतिराधी शक्तियां हैं, विशेषकर 'बैक्टेरियल ब्लाइट' जैसी बिमारी हो या धान के पौधों में लगने वाले कीट हों। इनमें से अनेक किस्मों का उपयोग चावल की नवीन प्रजातियों के निर्माण में किया भी जा रहा है।[65]

देशी धान की किस्मों को बढ़ावा देने के लिए डॉ॰ देबल देब, जो सेंटर फॉर इंटरडिस्सीप्लीनरी स्टडी, कोलकाता के प्रमुख हैं, ने उड़ीसा में देशी धान का एक बीज बैंक बनाया है। उनके अनथक प्रयास से आज लगभग 5000 किसानों ने अपने खेतों में देशी बीज लगाना फिर से शुरू कर दिया है। डॉ. देबल देब के अनुसार, 1970 के पहले बंगाल में धान की 5,600 से अधिक किस्में मौजूद थीं, पर आज 500 से भी कम किस्में बची हैं। डॉ. देब ने अपनी किताब में 340 किस्मों का दस्तावेजीकरण किया है। वर्ष 1998 में उन्होंने किसानों

---

[63] *Mohan, Vishwa. (2016). "Maha, MP Lead in Earmarking Special Organic Farming Zone", 10 July 2016, Times of India, New Delhi.*

[64] *Alvares, Claude. (1986). "Dr. Richharia's Story - Crushed, but not Defeated", 23 March 1986, Illustrated Weekly of India, Bombay.*

[65] *Menon, Meena. (2001). "The Grain Story", 2 July 2001, Business Line, New Delhi.*

के बीच मुफ्त में बीज के आदान–प्रदान के लिए 'व्रीहि' की स्थापना की। अथर्ववेद में 'व्रीहि' शब्द का प्रयोग धान के लिए किया गया था।[66]

पूर्वी क्षेत्रों में, ऐसे कई देशज धान की किस्में हैं जिन्हें किसानों ने अपने निजी ज्ञान के आधार पर तैयार किया है। इस क्षेत्र में सुगंधित, महीन, मोटे, उच्च–प्रोटीन, औषधीय गुण जैसी तमाम किस्में विकसित हुई हैं, जिनकी फसल 60 से 150 दिनों में तैयार हो जाती है। सदियों से स्थानीय किसानों ने कुछ अनोखे किस्मों को विकसित किया है, जैसे सबसे छोटे चावल 'जगफूल' (4 मि.मी. लम्बा), सबसे लम्बा – 'डोकरा', 'डोकरी' (14 मि.मी. लम्बा), और सबसे मोटा – 'हाथी पंजारा' (जिसमें एक फूल में दो दानें होते हैं)।[67] 'भीमसेन' की चौड़ाई सबसे अधिक है और एक किस्म का नाम है – 'उड़न पखेरू' क्योंकि इसकी लंबी और पंख जैसी आकृति है। डॉ॰ रिछारिया ने अपनी एक पुस्तक में 'चिक्को' नाम की एक किस्म के बारे में जिक्र किया है, जो बस्तर के आदिवासी क्षेत्र में पाया जाता है। इसकी खूबी ये है कि इसे पीसकर इसकी रोटी बनाई जा सकती है। एक और किस्म है – 'खोवा', जिसे उबालने के बाद उसका स्वाद दूध जैसा हो जाता है। कुछ बहुत लम्बी किस्में भी हैं जो मूरी (मुरमुरे) के लिए लोकप्रिय है, या मोटी किस्में हैं जिन्हें पोहा (चूड़ा) के रूप में पसंद किया जाता है। कई किस्में तो उच्च–उत्पादन वाली हैं और कई कीट प्रतिरोधी भी। धान की कुछ अन्य विशेष किस्में भी हैं, जैसे बिहार की 'तुलसी मंजरी', जिससे खीर बनाई जाती है, या कुछ किस्में ऐसी हैं जो सिर या जोड़ो के दर्द में औषधि का काम करती हैं।

6.6 पूर्वी क्षेत्रों में हरित क्रांति के विकास के लिए सुझाव/सिफारिशें

पिछले 5 वर्षों में जबसे 'बी.जी.आर.ई.आई' (BGREI) की शुरूआत हुई है तब से अनेक नागरिक समाज समूह लगातार किसानों के बीच जाकर ये बता रहे हैं कि 'बी.जी.आर.ई.आई' (BGREI) का भी पिछली हरित क्रांति की ही तरह पर्यावरण और स्वास्थ्य के ऊपर विनाशकारी प्रभाव पड़ सकता है।

'सतत तथा समग्र कृषि गठबंधन' (आशा), जो किसान समूहों का एक प्रगतिशील राष्ट्रव्यापी गठबंधन है, ने अपने तीसरे किसान स्वराज सम्मेलन (अप्रैल 2016 में हैदराबाद में आयोजित) के घोषणापत्र में कहा – ''पूर्वी भारत में हरित क्रांति की शुरुआत हमें अस्वीकार्य है, और 'बी.जी.आर.ई.आई' (BGREI) के ऊपर हो रहे निवेश को रोककर उसे पारिस्थितिक कृषि के प्रसार में लगाना चाहिए।'' किसानों को आंख मूंद कर 'बी.जी.आर.ई.आई' (BGREI) की तकनीकों को स्वीकार करने से रोकना चाहिए और इससे होने वाले दुष्प्रभावों और इसमें छुपे खतरों के बारे में अवगत कराना चाहिए। 'बी.जी.आर.ई.आई' (BGREI) के तहत प्रचारित फसलों के लिए सिफारिशें व सुझाव :

(क) धान के लिए सिफारिशें व सुझाव

- किसानों के हितों की सुरक्षा के लिए उपयुक्त प्रावधान हों, विशेषरूप से जब फसल नष्ट हो जाए या ठीक से बीज अंकूरित न होने पर

---

[66] *ibid*

[67] *Krishna Kumar, Asha. (2003). "The Raipur Collection", Vol. 20, Issue 02, 18-25 January 2003, Frontline, Chennai.*

- देशी धान की किस्मों को बढ़ावा दिया जाए
- डॉ॰ रिछारिया के धान की खेती के माडल को अपनाया जाए (परिशिष्ट 2 में इसका उल्लेख है)
- 'श्री विधि' का प्रचार किया जाए जिसमें पानी कम लगता है और उत्पादन ज्यादा होती है
- कृषि की स्थिरता (sustainability), मिट्टी का स्वास्थ्य और पर्यावरण सुरक्षा के सिद्धांतों को सबसे आगे रखा जाए
- पिछले साल के बचाए गए बीजों की खेती द्वारा बीज संप्रभुता को बचाकर रखा जाए
- जलवायु दबाव के प्रति सहनशील और लचनशील बीजों की संख्यावृद्धि की जाए
- धान निदेशालय और राज्य कृषि विश्वविद्यालयों के साथ मिलकर स्थानीय और देशी बीजों की गुणवत्ता और उत्पादकता बढ़ाना
- स्थानीय और देशी धान के बीजों की उपलब्धता सुनिश्चित करना
- विस्तारक संस्थाएं जैसे कृषि विज्ञान केंद्र और कृषक मित्र की मदद से स्थानीय और देशी बीजों के फायदों के बारे में जागरूकता फैलाना
- देशी धान के प्रसार के लिए नवीन तरीकों या माध्यमों के प्रयोग करना

(ख) मक्का के लिए सिफारिशें व सुझाव

- मक्के की देशी, पारंपरिक, या खुले परागण वाली (open pollinated) किस्मों को बढ़ावा देना
- बीज संप्रभुता सुनिश्चित करने के लिए गांवों में बीज बैंकों का गठन करना
- जलवायु दबाव के प्रति सहनशील और लचनशील बीजों का संरक्षण व संख्यवृद्धि करना
- सरकारी बीज संस्थाओं को पुनर्जीवित करना और उन्हें इस काबिल बनाना कि वे खुले परागण वाले बीजों का संरक्षण व संख्यवृद्धि कर सकें
- कृषि विश्वविद्यालयों को प्रोत्साहित करें कि वे जलवायु दबाव के प्रति सहनशील और लचनशील बीजों को खोजें, उनकी गुणवत्ता में सुधार करें और उनकी उपलब्धता सुनिश्चित करें
- किसानों के बीच बीजों के आदान–प्रदान की प्रथा को बढ़ावा देना
- अन्य फसलों के साथ मिलाकर की जाने वाली मक्के की खेती (मिश्रित) का प्रचार किया जाए
- खुले परागण वाली (open pollinated) किस्मों को बढ़ावा दिया जाए। 'मक्का शोध निदेशालय' (Directorate of Maize Research) ने सौ से भी ज्यादा खुले परागण वाली (open pollinated) किस्मों को जारी किया है। पी.पी.पी. में लगाए जा रहे हैं पैसों का खुले परागण वाली (open pollinated) किस्मों के विकास में लगाया जाए
- मोनसेंटो और अन्य बीज कंपनियों ने लगभग हर राज्य में कृषि विभागों के अंदर व्याप्त कमियों का

बखूबी फायदा उठाया है। खुले परागण वाली (open pollinated) किस्मों से 3 टन प्रति हेक्टेयर की पैदावार हासिल करना कोई मुश्किल काम नहीं है, बस अच्छे बीजों को चुन्ना आना चाहिए।

(ग) विवेकसम्मत मशीनीकरण के लिए सिफारिशें व सुझाव

- ट्रेक्टर, पावर टिलर और अन्य औजारों के किराए पर लेने के लिए 'विशेष किराया सेवाओं' (Custom Hiring Services – CHS) को बढ़ावा देना चाहिए
- 'कृषि मशीनरी बैंकों' का गठन किया जाना चाहिए जो किसानों को मशीन सप्लाई कर सके
- छोटे खेतों के लिए छोटे हाथ के औजारों और उपकरणों की ज्यादा जरूरत होती है। इन्हें छोटे किसानों को उपकरणों के पैकज के रूप में बांटा जाना चाहिए
- महंगे कृषि उपकरणों को खरीदने और उनके रखरखाव के लिए सहकारी संस्थाओं (cooperatives) के गठन पर विचार करना चाहिए

7. 'बी.जी.आर.ई.आई' (BGREI) योजना का संपूर्ण मूल्यांकन

इस योजना के क्रियांवयन में कई खामियां हैं। ऐसा लगता है कि इस क्षेत्र के बारे में और यहां की पारिस्थितिकी के बारे में समझे बिना ही ये योजना बना दी गई है। आईये, 'बी.जी.आर.ई.आई' (BGREI) के प्रभावों का मूल्यांकन करने के लिए कुछ सरकारी आंकड़ों को पलटा जाए।

तालिका 11 : 'बी.जी.आर.ई.आई' राज्यों में प्रमुख कृषि समूह और उनके जोत का आकार

पूर्वी राज्य	सीमांत (1 हे॰ से कम)	छोटे (1–2 हे॰)	अर्द्ध मध्यम (2–4 हे॰)	मध्यम (4–10 हे॰)	बड़े (10 हे॰ से ज्यादा)
असम	62.65	20.69	12.98	3.54	0.18
बिहार	84.18	9.24	5.09	1.42	0.08
छत्तीसगढ़	53.67	22.00	15.61	7.53	1.20
झारखण्ड	69.1	13.5	11.3	5.40	0.7
उड़ीसा	56.43	27.39	12.32	3.57	0.32
पूर्वी उत्तर प्रदेश	69.00	18.10	9.46	3.12	0.32
पश्चिम बंगाल	80.44	14.86	4.17	0.52	0.01
बी.जी.आर.ई.आई.	67.73	18.71	9.94	3.28	0.35
सकल भारत	62.88	18.92	11.69	5.48	1.02

Source: Agriculture at Glance, 2009

तालिका 11 के आंकड़े दिखाते हैं कि भारत के 7 पूर्वी राज्यों में से दो बड़े राज्यों – पश्चिम बंगाल और बिहार में 80 प्रतिशत किसानों के पास 1 हेक्टेयर से भी कम जमीन है। अगर हम 2 हेक्टेयर से कम वाले किसानों को देखें तो छत्तीसगढ़ को छोड़कर सभी राज्य इस श्रेणी में आते हैं। मध्यम श्रेणी के किसानों की संख्या देखें तो छत्तीसगढ़ और झारखण्ड को छोड़कर बाकी सभी राज्यों में 5 प्रतिशत से भी कम है।

'बी.जी.आर.ई.आई' (BGREI) को लागू करने के प्रथम दो वर्षों में नाममात्र का ही विकास देखने का मिलता है बावजूद इसके कि इसमें केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा भारी निवेश किया गया था। उच्च–उत्पादन वाली किस्में (HYV), संकर बीज और भारी मशीनीकरण, जैसी नई तकनीकों से छोटे और सीमांत किसानों की आजीविका गंभीर रूप से प्रभावित होंगे जिनकी तादाद यहां बहुत ज्यादा है।

7.1 धान, गेहूं और दलहन के उत्पादन में मामूली वृद्धि का रुझान

अगर हम धान, गेहूं और दलहन जैसी प्रमुख फसलों के उत्पादन की तुलना पिछले वर्ष से करें तो इनके उत्पादन में केवल मामूली उछाल ही पाएंगे। तालिका 12 के आंकड़े दिखाते हैं कि केवल बिहार में धान का उत्पादन 10 प्रतिशत से ज्यादा हुआ है। वर्ष 2010–2011 में, सभी 7 पूर्वी राज्यों का औसत उत्पादन विकास दर मात्र 0.3 प्रतिशत रहा और वर्ष 2011–2012 में यह बढ़कर 2.3 प्रतिशत हो गया।

तालिका 12 : धान का उत्पादन मैट्रिक्स QE: 2009&10, QE: 2010&11 **और** QE: 2011&12 **के दौरान 'बी.जी.आर.ई.आइ' राज्यों और सकल भारत में**

चौथा अग्रिम अनुमान (4th Advance estimates)

राज्य	उत्पादन (हजार टन में)			प्रतिशत बदलाव	
	QE: 2009-10	QE: 2010-11	QE: 2011-12	2009-10 और 2010-11 के बीच	2010-11 और 2011-12 के बीच
असम	3626.4	3863.2	4081.8	6.5	5.7
बिहार	4418.5	4339.8	4782.2	.1.8	10.2
छत्तीसगढ़	4794.4	5025.8	5223.2	4.8	3.9
झारखण्ड	2564.2	2474.6	2564.6	.3.5	3.6
उड़ीसा	6990.9	6984.7	6782.8	.0.1	.2.9
पूर्वी उत्तर प्रदेश	6049.0	6160.8	6558.2	1.8	6.5
पश्चिम बंगाल	14670.8	14377.8	14399.3	.2.0	0.1
बी.जी.आर.ई.आई.	**43116.2**	**43226.7**	**44346.1**	**0.3**	**2.6**
सकल भारत	**94023.4**	**94860.68**	**97054.02**	**0.9**	**2.3**
BGREI / भारत प्रतिशत	**46**	**46**	**46**	–	–

Source:DES, GOI and SDAs

इसी प्रकार अगर हम उत्पादकता (किलोग्राम प्रति हेक्टेयर) की तुलना करें (जैसा तालिका 13 में नीचे दिया गया है) तो फिर से केवल बिहार में ही 10 प्रतिशत की संतोषजनक वृद्धि देख पाएंगे। पूर्वी उत्तर प्रदेश और असम में भी 6 प्रतिशत की दर से पैदावार बढ़ी है। जबकि सभी 7 पूर्वी राज्यों की उत्पादकता 2010–2011 में 2 प्रतिशत और 2011–2012 में 3 प्रतिशत के दर से बढ़ी है। ये वृद्धि साल भर के मौसम के मिजाज जैसे, बाढ़ या सूखा पर निर्भर करती है और इनका असर पारंपरिक खेती पर भी उसी अनुपात में पड़ता है।

तालिका 13 : धान का उत्पादकता मैट्रिक्स QE: 2009-10, QE: 2010-11 और QE: 2011-12 के दौरान 'बी.जी.आर.ई.आइ' राज्यों और सकल भारत में चौथा अग्रिम अनुमान (4th Advance estimates)					
राज्य	**उत्पादकता (किलोग्राम प्रति हेक्टेयर में)**			**प्रतिशत बदलाव**	
	QE: 2009-10	**QE: 2010-11**	**QE: 2011-12**	**2009-10 और 2010-11 के बीच**	**2010-11 और 2011-12 के बीच**
असम	1522	1601	1695	5	6
बिहार	1308	1317	1453	1	10
छत्तीसगढ़	1287	1352	1402	5	4
झारखण्ड	1754	1853	1901	6	3
उड़ीसा	1574	1591	1576	1	.1
पूर्वी उत्तर प्रदेश	1968	2019	2143	3	6
पश्चिम बंगाल	2551	2575	2600	1	1
बी.जी.आर.ई.आई.	**1781**	**1818**	**1875**	**2**	**3**
सकल भारत	**2148**	**2175**	**2224**	**1**	**2**
Source: DES, GOI and SDAs					

यह सिर्फ धान के मामले में ही नहीं है, अगर हम गेहूं की पैदावार पर गौर करें तो हमें काफी मिलते–जुलते नतीजे मिलेंगे। 'बी.जी.आर.ई.आई' (BGREI) लागू होने के पहले साल गेहूं की पैदावार महत्वपूर्ण ढंग से सभी 7 राज्यों में बढ़ी, लेकिन ठीक अगले ही साल गेहूं की पैदावार लगभग 18 प्रतिशत लुढ़क गई (तालिका 14)।

तालिका 14 : गेंहू का उत्पादकता मैट्रिक्स QE: 2009-10, QE: 2010-11 और QE: 2011-12 के दौरान 'बी.जी.आर.ई.आइ' राज्यों और सकल भारत में चौथा अग्रिम अनुमान (4th Advance estimates)					
राज्य	**उत्पादकता (किलोग्राम प्रति हेक्टेयर में)**			**प्रतिशत बदलाव**	
	QE: 2009-10	**QE: 2010-11**	**QE: 2011-12**	**2009-10 और 2010-11 के बीच**	**2010-11 और 2011-12 के बीच**
असम	1129	1376	1152	22	–16
बिहार	1948	2504	2069	29	–17
छत्तीसगढ़	1015	1378	1107	36	–20

झारखण्ड	1573	2038	1712	30	–16
उड़ीसा	1457	1698	1475	17	–13
पूर्वी उत्तर प्रदेश	2529	3320	2732	31	–18
पश्चिम बंगाल	2423	3169	2666	31	–16
बी.जी.आर.ई.आई.	**2264**	**2957**	**2437**	**31**	**–18**
सकल भारत	**2776**	**3587**	**2938**	**29**	**–18**
Source: DES, GOI and SDAs					

दालों के उत्पादन में भी 'बी.जी.आर.ई.आई' (BGREI) को लागू करने के 2 साल बाद भी कोई उल्लेखनीय वृद्धि नहीं दिखी। दोनों साल में उत्पादन सिर्फ 3.6 प्रतिशत ही बढ़ा। इसलिए पूर्वी भारत में 'बी.जी.आर.ई. आई' (BGREI) का दालों के उत्पादन पर कोई खास असर नहीं पड़ा।

तालिका 15 : दालों का उत्पादन मैट्रिक्स QE: 2009-10, QE: 2010-11 और QE: 2011-12 के दौरान 'बी.जी.आर.ई.आइ' राज्यों और सकल भारत में चौथा अग्रिम अनुमान (4th Advance estimates)

राज्य	उत्पादन (हजार टन में)			प्रतिशत बदलाव	
	QE: 2009-10	QE: 2010-11	QE: 2011-12	2009-10 और 2010-11 के बीच	2010-11 और 2011-12 के बीच
असम	61.0	64.2	74.0	5.3	15.3
बिहार	464.7	482.9	497.1	3.9	2.9
छत्तीसगढ़	494.2	511.0	511.6	3.4	0.1
झारखण्ड	247.3	278.8	325.6	12.7	16.8
उड़ीसा	371.7	389.8	390.9	4.9	0.3
पूर्वी उत्तर प्रदेश	526.4	522.4	529.9	.0.8	1.4
पश्चिम बंगाल	150.9	151.3	158.1	0.2	4.5
बी.जी.आर.ई.आई.	**2316.3**	**24005**	**2487.2**	**3.6**	**3.6**
सकल भारत	**14314.4**	**15285.7**	**15887.77**	**6.8**	**3.9**
BGREI / भारत प्रतिशत	**16**	**16**	**16**	–	–
Source:DES, GOI and SDAs					

7.2 उच्च–उत्पादन वाली किस्में (HYV) : खर्च ज्यादा असर कम

'बी.जी.आर.ई.आई' (BGREI) पूर्वी भारत में उच्च–उत्पादन वाली किस्मों (HYV) का प्रसार कर रहा है। इन बीजों का उत्पादन चंद कृषि–व्यापार कंपनियां करती हैं और वे ही इन्हें बेचती भी हैं। इन कंपनियों के बीजों में विविधता बहुत कम होती है। ये उच्च–उत्पादन वाली किस्मों (HYV) के पैकेज महंगे होते हैं जो पारंपरिक किसानों के लिए एक प्रकार का आर्थिक जोखिम उठाने जैसा है। हरित क्रांति के लिए कुछ खास तरह के किसानों को टारगेट किया गया है, जिन्हें वे 'उन्नतिशील किसान' कहते हैं।[68]

तालिका 16 : पूर्वी भारत में उच्च–उत्पादन किस्म (HYV) का स्वीकार्यता

राज्य	खेती के लिए उपलब्ध किस्मों की संख्या				
	सिंचित	वर्षा आधारित उथली भूमि	वर्षा आधारित ऊंची भूमि	बोरो	कुल
असम	09	19	02	03	33
बिहार	19	21	13	03	56
छत्तीसगढ़	15	06	06	–	27
झारखण्ड	12	16	04	–	32
उड़ीसा	45	30	28	–	103
पश्चिम बंगाल	23	10	06	01	40
कुल	123	102	59	07	291

Source: Viraktamath, Dr. B.C., Presentation on Bringing Green Revolution in Eastern Region, nfsm.gov.in/Presentations/Eastern India/DRR.ppt

भारत के पूर्वी भाग में भौगोलिक भू–दृश्य हर जगह एक जैसा नहीं है। इस भाग में विभिन्न कृषि–पारिस्थितिकी (agroecology) इलाके, विभिन्न तलरूप (topography), विभिन्न मिट्टी के प्रकार, और कई जलवायु क्षेत्र (climatic zones) शामिल हैं। इन्हीं कारणों से, उच्च–उत्पादन वाली किस्में (HYV) या आधुनिक किस्मों के इस्तेमाल का अलग–अलग जगहों पर अलग–अलग परिणाम मिलते हैं। कोई भी एक तरह का बीज इस पूरे भू–भाग के लिए पारिस्थितिक रूप से या व्यवहारिक रूप से कामयाब नहीं हो सकता। हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं कि पूर्वी भारत में वहां की पारिस्थितिक और जलवायु विशेषताओं के अनुसार हर फसल की हजारों स्थानीय और पारंपरिक किस्में मौजूद हैं। लेकिन HYV और आधुनिक किस्मों की संख्या (तालिका 16) इतनी कम है कि छोटे किसानों की विविध सांस्कृतिक और पारिस्थितिक जरूरतों को पूरा नहीं कर सकते। दूसरी तरफ इन भ्ल्ट बीजों के कारण बीज संग्रहण और संरक्षण तकनीकों का ज्ञान धीरे–धीरे खत्म होता जा रहा है।

[68] *Rorabacher. J.A. (2010). "Hunger and Poverty in South Asia", Gayan Publishing House, New Delhi; page 61*

'बी.जी.आर.ई.आई' (BGREI) के तहत आधुनिक बीजों को जोरशोर से डंका बजाया जा रहा है, पर फिर भी हर एक पूर्वी राज्यों में पारंपरिक/स्थानीय किस्मों की खेती जारी है (तालिका 17), जो ये दिखाता है कि HYV और संकर बीज इस क्षेत्र में बहुत ज्यादा कामयाब नहीं हुए हैं।

तालिका 17 : भारत के पूर्वी राज्यों में पारंपरिक किस्मों के तहत फसलों का क्षेत्र (प्रतिशत) 2002 से 2011

राज्य	2001-02	2002-03	2003-04	2004-05	2005-06	2006-07	2007-08	2008-09	2009-10	2010-11	औसत
धान											
प॰ बंगाल	10.9	10.8	10.6	10.6	9.3	9.2	8.5	8.5	8.5	–	9.8
उड़ीसा	36.5	37.6	35.8	32.8	30.7	28.9	26.5	22.9	21.0	19.4	30.3
बिहार	52.1	48.5	54.1	52.3	50.8	48.7	49.0	49.2	52.6	29.0	49.0
छत्तीसगढ़	83.3	74.0	80.8	80.5	78.3	76.3	75.8	74.5	77.6	–	78.6
गेंहू											
बिहार	23.0	25.8	29.2	27.4	26.2	23.7	25.7	25.0	26.8	–	26.0
मक्का											
बिहार	65.5	51.7	66.2	64.8	63.0	62.8	61.4	–	64.6	–	62.9

Source: http://xiss.ac.in/JJDMS/Vol14/Issue2/pdf/2-Singh,%20Kumar%20&%20Pal.pdf

धान में पारंपरिक बीजों की खेती के क्षेत्रफल में अलग–अलग राज्यों में काफी अंतर है। वर्ष 2000–2001 और 2010–2011 का औसत देखें तो पश्चिम बंगाल में 9.8 प्रतिशत धान के खेतो में पारंपरिक बीजों का इस्तेमाल हो रहा था, वहीं उड़ीसा में 30.3 प्रतिशत, बिहार में 49 प्रतिशत, छत्तीसगढ़ में 78.6 प्रतिशत। इसी प्रकार बिहार में 26 प्रतिशत गेंहू क्षेत्र में पारंपरिक गेहूं के बीज लगाए जा रहे थे और 63 प्रतिशत मक्के के क्षेत्र में पारंपरिक मक्के के बीजों से खेती हो रही थी।

पारंपरिक बीजों की निरंतरता के पीछे प्रमुख कारण यह है कि इन बीजों के फसलों को बिना सिंचाई के, विपरीत स्थितियों में, और कम बाहरी सामग्रियों के साथ उगा सकते हैं परंतु आधुनिक बीजें से अच्छा परिणाम तभी मिलता है जब उन्हें उपयुक्त सिंचाई और पर्याप्त खाद के साथ–साथ उनका सटीक प्रबंधन किया जाए।

कई किसानों को अपने पंपिंग सेट की गहराई फिर से बढ़ानी पड़ी क्योंकि पानी का स्तर तेजी से गिर रहा था। इनके पास सिंचाई के लिए भू–जल के अलावा दूसरा कोई विकल्प नहीं था।

पूर्वी क्षेत्र में HYV और संकर बीजों को किसानों ने कम अपनाया है। ऐसे कई कारण हैं जो ये निर्धारित करते हैं कि कौन से बीजों को कितना अपनाया जाएगा। इनमें से प्रमुख हैं – जैव–भूभौतिकीय (bio-geophysical), भौगोलिक (geographical), तलरूप (topographical), सिंचाई की सुविधा, उत्तम बीजों की समय पर उपलब्धता, निवेश और ऋण की उपलब्धता, जोत का आकार, पौष्टिक गुण, मनपसंद भोजन, चारा और भूसा, अजैव व जैविक दबाव (abiotic and biotic stress) झेलने की शक्ति, और किसानों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति।

उदाहरण के लिए, सिंचाई उपलब्ध होने के बावजूद एक किसान ने धान की आधुनिक बीज को इसलिए नहीं अपनाया क्योंकि उसे सिंचाई के लिए एक विशेष प्रकार का ट्यूबवेल लगाना था जिसका खर्च उठा पाना उसके लिए संभव नहीं था। जो किसान जीवन–निर्वाह के लिए कृषि करते हैं उन्हें आसानी से ऋण की सुविधा प्राप्त नहीं होती। ऐसे किसान मुश्किल से आधुनिक बीजों को अपनाते हैं। इसी प्रकार धान की ऊंची भूमि (uplands) में भी पारंपरिक बीजों को आधुनिक बीजों की तुलना में ज्यादा प्राथमिकता दी जाती है क्योंकि उनमें अजैव व जैविक दबाव (abiotic and biotic stress) झेलने की शक्ति ज्यादा होती है। पारंपरिक बीजों को इसलिए भी पसंद किया जाता है क्योंकि ये HYV और संकर बीजों की तुलना में ज्यादा पौष्टिक होता है।[69]

7.3 रोज़गार उत्पन्न करने में विफल

नीचे दिये गए ग्राफ से पता चलता है कि वर्ष 2010–2011 के बाद कृषि में मजदूरों की संख्या में कमी आई है। इसके पीछे कई कारण हैं पर एक प्रमुख कारण है – ट्रैक्टर और पावर टिलर जैसे भारी मशीनों का प्रयोग। हम सब जानते हैं कि कृषि मे कटाई और जुताई में काफी मजदूरों की जरूरत पड़ती है। बिहार और झारखण्ड में देख सकते हैं कि प्रत्येक फसल के मामले में कृषि मजदूरों की संख्या घटी है। शायद यही वजह है कि इन राज्यों से सबसे ज्यादा मजदूर रोजगार की तलाश में शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं।

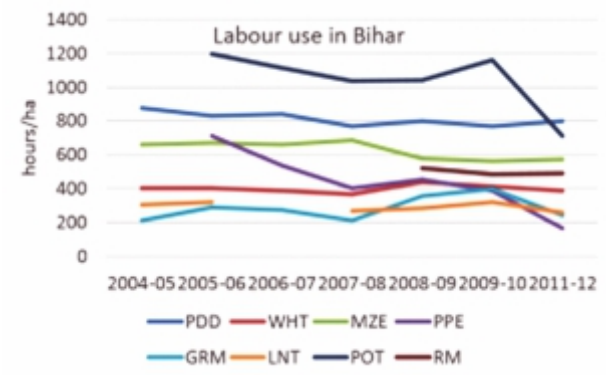

(PDD-Paddy; WHT-Wheat; MZE-Maize; PPE-Pegion pea; GRM-Gram; LNT-Lentil; POT-Potato; RM-Rapeseed/Mustered; MNG-Moong; NSD-Nigerseed; SSM-Sesamum; BLG-Blackgram; JUT-Jute; CTN-Cotton; GNT-groundnut)

Sources: Directorate of Economic and Statistics, Ministry of Agriculture, Govt. of India.

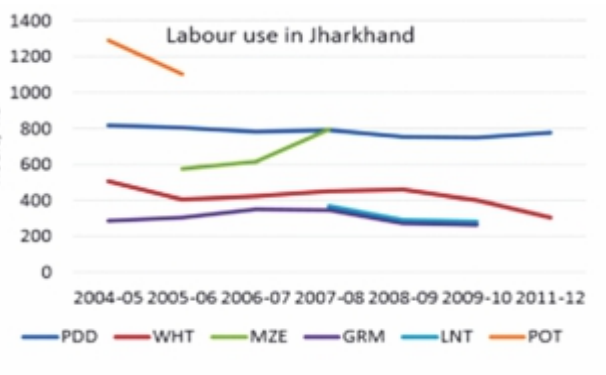

(PDD-Paddy; WHT-Wheat; MZE-Maize; PPE-Pegion pea; GRM-Gram; LNT-Lentil; POT-Potato; RM-Rapeseed/Mustered; MNG-Moong; NSD-Nigerseed; SSM-Sesamum; BLG-Blackgram; JUT-Jute; CTN-Cotton; GNT-groundnut)

Sources: Directorate of Economic and Statistics, Ministry of Agriculture, Govt. of India.

[69] *http://xiss.ac.in/JJDMS/Vol14/Issue2/pdf/2-Singh,%20Kumar%20&%20Pal.pdf*

पहले पलायन उन्हीं मौसमों में होता था जब कृषि में ज्यादा काम नहीं होता है। जुताई और कटाई के समय लोग वापस गांव में लौट आते थे पर अब मशीनीकरण के बाद से गांव के मजदूर स्थाई रूप से पलायन कर रहे हैं। इस प्रकार 'बी.जी.आर.ई.आई' (BGREI) पूर्वी राज्यों में रोजगार उत्पन्न करने में पूरी तरह से नाकामयाब रही है और इस प्रकार ये पलायन को भी रोक पाने में विफल रही है।

7.4 अन्य उपयोगी और पौष्टिक फसलें

भले ही केंद्रीय सरकार और राज्य सरकारें अंधाधुध तरीके से 'बी.जी.आर.ई.आई' (BGREI) के तहत धान और गेंहू को प्रोत्साहित कर रही हैं पर शायद ये इस बात से अनभिज्ञ हैं कि ऐसा करने से पूर्वी भारत में उगने वाली अन्य उपयोगी और पौष्टिक फसलों के ऊपर काफी बुरा प्रभाव पड़ेगा। इससे न सिर्फ इन फसलों का क्षेत्रफल घटेगा बल्कि इसका सीधा प्रभाव इस इलाके के छोटे और सीमांत किसानों की पोषण सुरक्षा (nutrition security) पर भी पड़ेगा।

दूसरा, पूर्वी भारत में तिलहन, सब्जियां, मसाले इत्यादि के उत्पादन में रसायन खाद और कीटनाशकों का ज्यादा उपयोग नहीं होता है पर 'बी.जी.आर.ई.आई' (BGREI) द्वारा प्रस्तावित तकनीकों (विशेष रूप से रासायनिक खाद और कीटनाशक व भारी मशीनें) से इन फसलों के ऊपर बुरा असर पड़ेगा। इन इलाकों में रसायनों का उपयोग बढ़ जाएगा जिससे मिट्टी और पर्यावरण दूषित हो जाएगा और साथ ही खेती का खर्च भी बढ़ जाएगा।

बिहार कृषि योजना आयोग के अनुसार पूरे देश में बिहार का सब्जी उत्पादन में तीसरा स्थान है, जिसे बिना किसी कृत्रिम खाद, कीटनाशकों, शाकनाशक या भारी मशीनों के किया जाता है। यहां तक की देश के सबजी उत्पादन में शीर्ष दो राज्य – पश्चिम बंगाल और उत्तर प्रदेश भी मूल रूप से पारंपरिक तरीकों और बागवानी पर निर्भर हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश को छोड़ कर, पूर्वी उत्तर प्रदेश के ज्यादार इलाकों में खेती पारंपरिक तरीकों पर ही आधरित है जिसमें कृत्रिम खाद और मशीनों का न के बराबर उपयोग होता है।

हम पहले ही देख चुके हैं कि कैसे सब्जियों, तिलहन, मसालों, हल्दी, लहसुन, मिर्च, धनिया, अदरक के मामले में पूर्वी राज्य अन्य राज्यों के मुकाबले पहले से ही कहीं आगे हैं। 'बी.जी.आर.ई.आई' (BGREI) का निश्चित रूप से इन फसलों के ऊपर बुरा प्रभाव पड़ेगा।

7.5 मशीनीकरण का प्रभाव

मशीनीकरण को आधुनिकता के साथ जोड़कर देखा जाता है। स्थानीय स्तर पर इसकी उपयोगिता का अध्ययन किए बिना ही हमने पश्चिमी देशों की नकल शुरू दी। ये भी नहीं सोचा कि इससे हमारी पूरी कृषि व्यवस्था का उत्पादन ढांचा ही बदल जाएगा।

भारत में और विशेष रूप से पूर्वी राज्यों में छोटे और सीमांत किसानों की संख्या बहुत ज्यादा है। इनके लिए भारी मशीनों का खर्च उठा पाना संभव नहीं और कोई भी बैंक इन्हें ऋण देने से रहा। अगर ऋण मिल भी गया तो ये किसान उम्र भर कर्ज के बोझ तले दबे रहेंगा या फिर आत्महत्या करने को मजबूर हो जाएंगे। एक बड़ी संख्या उन किसानों की भी है जो बटाईदारी पर खेती करते हैं। यह सब सोचे बिना ही 'बी.जी.आर.ई. आई' (BGREI) के तहत मशीनीकरण के लिए अंधाधुंध जोर डाला जा रहा है।

निष्कर्ष

पूर्वी राज्यों में दूसरी हरित क्रांति के पीछे यह तर्क दिया जा रहा है कि भारत को इतनी बड़ी आबादी का पेट भरने के लिए पर्याप्त खाद्यान्न चाहिए। 'बी.जी.आर.ई.आई' (BGREI) कार्यक्रम के पृष्ठभूमि में 'भोजन का अधिकार' स्कीम है। 'बी.जी.आर.ई.आई' (BGREI) का उद्देश्य स्थाई कृषि और खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ाना है। परंतु इसे जिस तरह से लागू किया जा रहा है वह ठीक नहीं है और इसलिए यह बेहद जरूरी है कि इसकी एक समालोचनात्मक जांच–पड़ताल की जाए।

'बी.जी.आर.ई.आई' (BGREI) में गेहूं और धान के उत्पादन को बढ़ाने के लिए सूक्ष्म पोशक तत्वों (micro-nutrients) और संकर बीजों का जोरदार प्रचार किया जा रहा है। भारत में हरित क्रांति के जनक, डॉ॰ एम. एस. स्वामीनाथन ने भी इस दूसरी हरित क्रांति को 'टेक्नोक्रेटिक' बताया है, जिसमें सारा ध्यान केवल संकर धान पर रखा गया है और जल प्रबंधन, सिंचाई और मिट्टी का स्वास्थ प्रबंधन जैसे अन्य पहलुओं को नजरअंदाज किया गया है।[70] उड़ीसा के कृषि विभाग के निदेशक, आर. एस. गोपालन के अनुसार किसान संकर धान के प्रति ज्यादा उत्साही नहीं है क्योंकि इन बीजों को वे अगले साल दोबारा इस्तेमाल नहीं कर सकते।[71]

भारत के पूर्वी राज्यों में गरीब आदिवासी, महिलाएं और छोटे किसानों की महंगे संकर बीजों और रसायनों के ऊपर निर्भरता बढ़ाकर और सारा ध्यान गेहूं और धान के ऊपर केंद्रित करके वही गलती फिर से दोहराई जा रही है जो गलती पिछली हरित क्रांति के दौरान हुई थी।[72]

'सतत तथा समग्र कृषि गठबंधन' (आशा) ने पूर्वी भारत में कृषि विकास और आजीविका को बेहतर बनाने के लिए एक 'किसान पंचायत' का आयोजन किया जिसमें किसानों ने दूसरी हरित क्रांति के बदले एक 'कर्ज–मुक्त', 'जहर–मुक्त', 'आत्मनिर्भर', 'एकीकृत' और 'सशक्त करने वाली' कृषि व्यवस्था की मांग की। किसानों ने यह भी कहा कि वे अपने राज्यों में 'पंजाब जैसी स्थितियां' नहीं चाहते हैं, जहां शुरुआत में तो उत्पादन बढ़ा पर बाद में वह स्वास्थ्य, पर्यावरण और आर्थिक आपदा में बदल गया। किसान सरकार से इस तरह का कोई अनुदान नहीं चाहते और हरित क्रांति को पूरी तरह से नकारते हैं। इससे उनके खर्च बढ़ेंगे, उनके स्वास्थ्य के ऊपर बुरा प्रभाव पड़ेगा, और उनके समस्त संसाधन दूषित हो जाएंगे और सबसे जरूरी, ये उन्हें कर्ज में डुबो देगा।

उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल जैसे पूर्वी इलाकों में अनेकों फसलें (जैसे आलू, दलहन, मसाले, मक्का, इत्यादि) तथा बागवानी (जैसे लिची, आम इत्यादि) सतत विकास और आमदनी के हिसाब से बिलकुल सही है। पर 'बी.जी.आर.ई.आई' (BGREI) गेंहू और धान की एकल–फसल (mono-cropping) का प्रचार कर रहा है। ऐसे में इन दूसरी फसलों का क्या होगा ? किसान पंचायत में किसानों ने विविध प्रकार के बीजों और

---

[70] *https://www.telegraphindia.com/1120715/jsp/7days/story_15730495.jsp*

[71] *ibid*

[72] *http://www.kisanswaraj.in/tag/bgrei/*

उनकी उपलब्धता की आजादी की भी मांग की।[73] वे इस बात पर गंभीर थे कि गेहूं और धान के ऊपर सारा ध्यान दिया जाना अनुचित है; अन्य फसलों के ऊपर भी उतना ही ध्यान दिया जाना चाहिए, तभी जाकर सही मायने में हम खाद्य सुरक्षा हासिल कर पाएंगे। संकर धान और गेहूं के लिए अतिरिक्त जल संसाधन की मांग बढ़ेगी। पहले ही पानी की इतनी कमी है, ऐसे में मनुष्यों और पशुओं के लिए पानी की उपलब्धता और खतरे में पड़ जाएगी।

'आशा' का यह भी मानना है कि 'बी.जी.आर.ई.आई' (BGREI) में आवंटित की गई राशि को वहां खर्च करने के बदले 'कर्ज मुक्त, जहर मुक्त, पारिस्थितिकी कृषि' के प्रचार में लगाना चाहिए और इस प्रक्रिया में बीजों पर आत्मनिर्भरता के ऊपर भी उतना ही ध्यान दिया जाना चाहिए जितना की उत्पादकता के ऊपर।

इसके साथ–साथ यह भी जरूरी है कि 'कटाई–उपरांत तकनीकों' (post-harvesting technology) और 'भंडारण' सुविधाओं (storage facilities) के ऊपर उचित ध्यान दिया जाए। अपर्याप्त भंडारण सुविधाओं के कारण किसानों को ज्यादा उत्पादन होने पर भी उसका सही लाभ नहीं मिल पाता है। उन्हें अक्सर मजबूरी में अपनी फसलों को बाजार में कम दामों में बेचना पड़ता है। इस तरह उत्पादन में वृद्धि हो भी जाए तो उसका सारा फायदा किसानों के हाथ से छीन कर बिचौलिये और बहुराष्ट्रीय कंपनियां ले जाती हैं। सही मायने में किसानों के लिए उत्पादन वृद्धि से ज्यादा बड़ा मुद्दा समर्थन मूल्य का है।[74] किसानों को अपनी मेहनत और पैदावार का सही दाम मण्डी में मिल जाए यही काफी है।

कृषि के विकास के लिए 'स्थाई और सतत विकास' को हमेशा केंद्र में रखा जाना चाहिए। इसके लिए फसल आवर्तन, कृषि में विविधता, जल निकाय और जल संचयन, न्यूनतम लागत और बाहरी सामग्रियों का प्रयोग, रासायनिक खाद के बदले प्राकृतिक खाद, भारी मशीनों के बदले मजदूरों का इस्तेमाल, इत्यादि काफी महत्वपूर्ण है।

इसलिए, जब तक सभी कृषि संबंधी नीतियों का व्यापक मूल्यांकन नहीं हो जाता, ये कैसे मान लिया जाए कि 'बी.जी.आर.ई.आई' (BGREI) से किसानों को फायदा पहुंचेगा। जब तक नीतिगत स्तर पर खामियों को दूर नहीं कर लिया जाता, इस देश का किसान का विकास कभी नहीं होगा। अभी तो ज्यादातर नीतियों से केवल कृषि कंपनियों को ही फायदा पहुंच रहा है। छोटे किसान, आदिवासी, महिलाएं और प्राकृतिक खेती करने वाले किसानों के खून पसीने की मेहनत को तो वाजिब दाम भी नहीं मिल पा रहा है।

सरकार को पूर्वी भारत में हरित क्रांति को ऊपर से थोपना नहीं चाहिए। एक व्यापक जन मूल्यांकन होना चाहिए जिसके लिए हर इलाके में किसान पंचायतों का आयोजन किया जाना चाहिए। पता तो चले कि पिछली हरित क्रांति से कौन–कौन से फायदे और नुकसान हुए हैं और यह भी कि फायदे में कौन रहा और नुकसान किसको उठाना पड़ा। ये भी पता चलना चाहिए कि हरित क्रांति का कर्जदारी और किसान आत्महत्या के साथ क्या संबंध है। पिछली हरित क्रांति की गलतियों को दोबारा दोहराना कहां की समझदारी है?

---

[73] *ibid.*

[74] *https://www.telegraphindia.com/1120715/jsp/7days/story_15730495.jsp*

परिशिष्ट 1

प्रमुख संकर धान बीज कंपनियां	
कंपनी	**संकर किस्म**
जे.के. एग्री जेनेटिक्स (J.K. Agri Genetics)	JKRH-401; DRRH-3; RH-10
डेव जेन (Dev Gen)	PRH-122 (Ganga); RH-1531 (Gold)
गंगा कावेरी (Ganga Kaveri)	GK-5003 (Rambha)
रैलिस इंडिया (Rallis India)	RIL-090;
श्री राम फर्टीलाईजर (Sri Ram Fertilisers)	Reshma; DRRH-2
नुज़ीवीडु (Nuziveedu)	Sahadri-4; NDRH-2
बिस्को बायो साइंसेज़ Bisco Champa-803	(Bisco-Bio Sciences) Bisco Gulab 907; Bisco Bela-911;
इंडो–अमेरिकन (Indo-American)	India-200-017
पायोनियर (Pioneer)	PHB-71
रास्सी सीड (Rassi Seed)	RHR-111
वी.एन.आर सीड्स (VNR Seeds)	VNR-2355+; VNR-2245
बायर क्रॉप साइंस (Bayer Crop Science)	Arize-6129; Arize-6444
निर्मल (Nirmal)	Sahyadri-4
सीड वर्क्स (Seed Works)	US-312
धान्या (Dhaanya)	DRH-775; DRHCROH-3
कावेरी (Kaveri)	Kaveri-9090; KPH-412
यू.पी.एल एडवांटा (UPL Advanta)	PAC-835; Pac-837
श्री राम बायो सीड्स (Sri Ram Bio Seeds)	DRRH-2
माहिको (MAHYCO)	Suruchi-5401; Suruchi-5402; Suruchi-5629
संसार एग्रो–पोल (Sansar Agro-Pol)	Ajaya; Rajalaxmi
सुपर एग्री (Super Agri)	SPH-115; SPH-125

परिशिष्ट 2

धान के पारंपरिक बीज और डॉ॰ रिछारिया की योजना

धान की खेती देशभर में विविध प्रकार की स्थितियों में होती है, कभी–कभी तो एक ही गांव के अंदर एक खेत से दूसरे खेत में स्थितियां बदल जाती हैं। यही वजह है कि इतने सालों में धान की इतनी सारी स्थानीय और देशी किस्में, अलग–अलग स्थितियों और अलग–अलग गुण के हिसाब से विकसित हो गई हैं।

भारत की पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने एक बार डॉ॰ आर. एच. रिछारिया से एक ऐसी योजना तैयार करने को कहा जिससे देश में धान की उत्पादन को बढ़ाया जा सके।[75] डॉ॰ रिछारिया ने अपनी लगन और महनत से एक बेशकीमती दस्तावेज तैयार किया। ये दस्तावेज अभी भी उतना ही प्रासंगिक है। पर श्रीमती गांधी की मृत्यु के बाद इस योजना के ऊपर किसी का ध्यान नहीं गया।

डॉ॰ रिछारिया केंद्रीय धान शोध संस्थान, कटक के निदेशक और रायपुर कृषि विश्वविद्यालय के कुलपति थे। 'रायपुर संग्रह' के नाम से इन्होंने धान के जर्मप्लाज्म (germplasm) का एक बैंक स्थापित किया, जो भारत का पहला और विश्व का दूसरा सबसे बड़ा ऐसा संग्रह था। इसे अब रायपुर निकट इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय में सुरक्षित रखा गया है।[76]

आज डॉ॰ रिछारिया की योजना को फिर से देखे जाने की जरूरत है, जिन्होंने धान उत्पादन से जुड़ी अपार संभावनाएं को खोजा था। डॉ॰ रिछारिया ने कृषि विकास के क्षेत्र में सरकारी दृष्टिकोण की कमियों के बारे में भी बताया था। उनके अनुसार सबसे बड़ी कमी ये रही है कि ''नए बीजों का प्रचार करने में सरकारी विभागों ने काफी हड़बड़ी दिखाई। नए संकर और उच्च–उत्पादन वाले किस्मों (HYV) को फैलाने की जल्दीबाजी में हमने उन स्थानीय बीजों को भी बदल दिया जिनका उत्पादन बहुत अच्छा था। दूसरी तरफ, हम ये भूल गए कि इन इलाकों में सुखा की स्थिति बार–बार पैदा हो जाती है जिसमें उच्च–उत्पादन वाली किस्में (HYV) का उत्पादन पूरी तरह से गिर जाता है।'' इसके अलावा भारी सिंचाई और खाद के इस्तेमाल से उच्च–उत्पादन वाली किस्में (HYV) खुद ही रोग और कीटों को न्योता दे बैठती हैं, जिससे उत्पादन में और फर्क पड़ जाता है।

डॉ॰ रिछारिया की योजना में किसानों के ज्ञान और बुद्धिमत्ता को उचित श्रेय दिया गया है। दरअसल भारत के सारे कृषि विकास और शोध कार्यक्रमों का रवैया बड़ा केंद्रीकृत रहा है, जिसमें किसानों के ज्ञान का कोई मोल नहीं है। डॉ॰ रिछारिया ने इसे उलट दिया। उनके 'अनुकूल धान शोध' के मॉडल में किसानों की एक अहम भूमिका थी। इसे वे सार्वजनिक ज्ञान का एक भंडार के रूप में उभारना चाहते थे जिससे स्थानीय खेती और भी ज्यादा सुदृढ़ हो सके।

---

[75] *Dogra, Bharat. (2013). "Rice Formula on the Back Burner", 13 October 2013, The Hindu, New Delhi.*

[76] *Krishna Kumar, Asha. (2003). The Raipur Collection, Vol. 20, Issue 02, 18-25 January 2003, Frontline, Chennai*

उन्होंने 'अनुकूल धान केंद्र' की परिकल्पना की जो अलग–अलग इलाकों में सभी स्थानीय धान बीज उत्पादकों के संरक्षण का काम करेगा। इन्हें धान के जर्मप्लाज़्म (germplasm) का स्थानीय खजाने के रूप में जाना जाएगा। धान के इन केंद्रों का मुख्य काम होगा :

(क) भविष्य के अध्ययनों के लिए विकसित की गई धान की जेनेटिक (genetic) सामग्री का रखरखाव और इस्तेमाल। इन जेनेटिक (genetic) सामग्रियों को बड़ी गंभीरता से बचा कर रखा जाए और उनका ऐसे व्यवहार किया जाए मानो ये दुनिया भर में केवल यहीं पाए जाते हों। इन जेनेटिक (genetic) सामग्रियों को इनके मूल रूप में ही संग्रहित किया जाए, मतलब इनके प्राकृतिक वास में, जिसका अर्थ यह निकलता है कि इन्हें धान उत्पादकों की मदद से हर साल उगाया जाए।

(ख) युवा किसानों को अपने धान के बीजों की अहमियत और महत्व की समझ विकसित करने के लिए उपयुक्त शिक्षा दी जाए।

(ग) धान के किसानों को अपनी स्थानीय और देशी धान की किस्मों की ही खेती करने के लिए प्रेरित करना। स्थानीय बीजों को केंद्र की मदद से थोड़ी मात्रा में वितरण किया जाए और किसानों को यह बताया जाए कि वे कैसे बड़े कम समय में 'प्रतिरूप प्रचार विधि' (clonal propagating method) की मदद से इनकी संख्यावृद्धि कर सकते हैं। इस विधि का हर केन्द्र में प्रदर्शन किया जाए।

डॉ॰ रिछारिया की यह योजना पूरी तरह से पर्यावरण अनुकूल है क्योंकि इसमें मौजूदा स्थानीय बीजों के ऊपर जोर डाला गया है जिनसे बिना रासायनिक खाद और कीटनाशकों के हम अच्छी पैदावार हासिल कर सकते हैं।

फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ

फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ, एशिया (थाईलैंड, फिलीपीन्स एवं भारत) में स्थित एक नीति शोध संगठन है। फोकस भारत एवं विश्व के दक्षिण भाग (यानी विकासशील देशों) में वैश्वीकरण की राजनीतिक अर्थव्यवस्था और इस प्रक्रिया में अंतर्निहित प्रमुख संस्थाओं के बारे में शोध तथा विश्लेषण प्रदान कर सामाजिक आंदोलनों एवं समुदायों की सहायता करता है। फोकस के लक्ष्य दमनकारी आर्थिक एवं राजनीतिक संरचनाओं की समाप्ति, स्वतंत्र संरचनाओं तथा संस्थाओं का निर्माण, विसैन्यीकरण और शांति को बढ़ावा देना है।

रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफटुंग (आर.एल.एस.)

रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफटुंग (आर.एल.एस.) जर्मनी में स्थित एक फाउंडेशन है, जो दक्षिण एशिया की तरह ही विश्व के अन्य भागों में महत्वपूर्ण सामाजिक विश्लेषण और नागरिक शिक्षा के विषयों पर कार्य कर रहा है। यह एक संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष एवं लोकतांत्रिक सामाजिक व्यवस्था को बढ़ावा देता है। इसका उद्देश्य समाज एवं नीति निर्धारकों के सामने वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करना है। यह शोध संगठनों, स्व–मुक्ति के लिए संघर्ष करने वाले समूहों और सामाजिक कार्यकर्ताओं को उन मॉडल्स के विकास में उनकी पहलों में मदद देता है, जिनमें अत्यधिक सामाजिक एवं आर्थिक न्याय देने की क्षमता है।